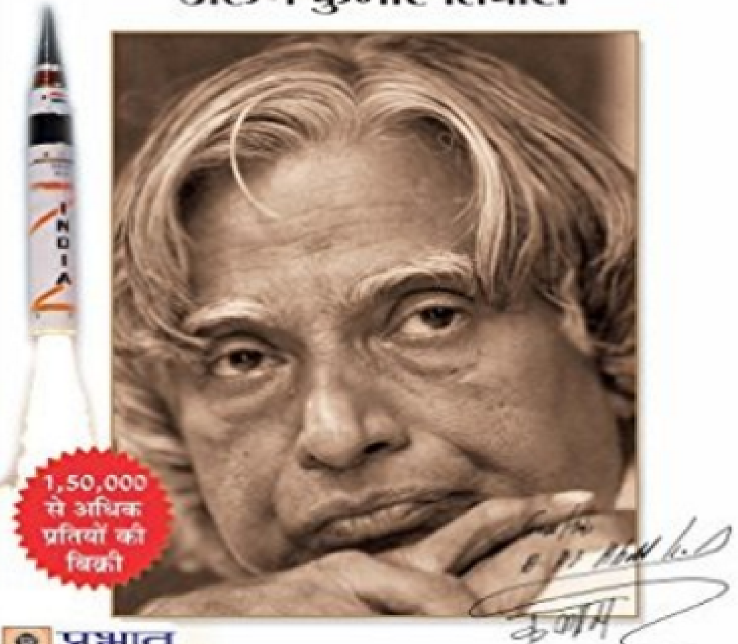
WINGS OF FIRE का हिंदी अनुवाद

अग्नि की उड़ान

डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम
अरुण कुमार तिवारी



प्रभात

अनुक्रमणिका

: एक :

मेरा जन्म मद्रास राज्य (अब तमिलनाडु) के रामेश्वरम् कस्बे में एक मध्यम वर्गीय तमिल परिवार में हुआ था। मेरे पिता जैनुलाबदीन की कोई बहुत अच्छी औपचारिक शिक्षा नहीं हुई थी और न ही वे कोई बहुत धनी व्यक्ति थे। इसके बावजूद वे बुद्धिमान थे और उनमें उदारता की सच्ची भावना थी। मेरी माँ, आशियम्मा, उनकी आदर्श जीवनसंगिनी थीं। मुझे याद नहीं है कि वे रोजाना कितने लोगों को खाना खिलाती थीं; लेकिन मैं यह पक्के तौर पर कह सकता हूँ कि हमारे सामूहिक परिवार में जितने लोग थे, उससे कहीं ज्यादा लोग हमारे यहाँ भोजन करते थे।

मेरे माता-पिता को हमारे समाज में एक आदर्श दंपती के रूप में देखा जाता था। मेरी माँ के खानदान का बड़ा सम्मान था और उनके एक वंशज को अंग्रेजों ने 'बहादुर' की पदवी भी दे डाली थी।

मैं कई बच्चों में से एक था, लंबे-चौड़े व सुंदर माता-पिता का छोटी कद-काठी का साधारण सा दिखनेवाला बच्चा। हम लोग अपने पुश्तैनी घर में रहते थे। यह घर उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य में बना था। रामेश्वरम् की मसजिदवाली गली में बना यह घर चूने-पत्थर व ईंट से बना पक्का और बड़ा था। मेरे पिता आडंबरहीन व्यक्ति थे और सभी अनावश्यक एवं ऐशो-आरामवाली चीजों से दूर रहते थे। पर घर में सभी आवश्यक चीजें समुचित मात्रा में सुलभता से उपलब्ध थीं। वास्तव में, मैं कहूँगा कि मेरा बचपन बहुत ही निश्चिंतता और सादेपन में बीता—भौतिक एवं भावनात्मक दोनों ही तरह से।

मैं प्राय: अपनी माँ के साथ ही रसोई में नीचे बैठकर खाना खाया करता था। वे मेरे सामने केले का पत्ता बिछातीं और फिर उसपर चावल एवं सुगंधित, स्वादिष्ट साँभर देतीं; साथ में घर का बना अचार और नारियल की ताजा चटनी भी होती।

प्रतिष्ठित शिव मंदिर, जिसके कारण रामेश्वरम् प्रसिद्ध तीर्थस्थल है, का हमारे घर से दस मिनट का पैदल रास्ता था। जिस इलाके में हम रहते थे, वह

मुसलिम बहुल था। लेकिन वहाँ कुछ हिंदू परिवार भी थे, जो अपने मुसलमान पड़ोसियों के साथ मिल-जुलकर रहते थे। हमारे इलाके में एक बहुत ही पुरानी मसजिद थी, जहाँ शाम को नमाज के लिए मेरे पिताजी मुझे अपने साथ ले जाते थे। अरबी में जो नमाज अता की जाती थी, उसके बारे में मुझे कुछ पता तो नहीं था, लेकिन यह पक्का विश्वास था कि ये बातें ईश्वर तक जरूर पहुँच जाती हैं। नमाज के बाद जब मेरे पिता मसजिद से बाहर आते तो विभिन्न धर्मों के लोग मसजिद के बाहर बैठे उनकी प्रतीक्षा कर रहे होते। उनमें कई लोग पानी के कटोरे मेरे पिताजी के सामने रखते; पिताजी अपनी अँगुलियाँ उस पानी में डुबोते जाते और कुछ पढ़ते जाते। इसके बाद वह पानी बीमार लोगों के लिए घरों में ले जाया जाता। मुझे भी याद है कि लोग ठीक होने के बाद शुक्रिया अदा करने हमारे घर आते। पिताजी हमेशा मुसकराते और शुभचिंतक एवं दयावान अल्लाह को शुक्रिया कहने को कहते।

रामेश्वरम् मंदिर के सबसे बड़े पुजारी पक्षी लक्ष्मण शास्त्री मेरे पिताजी के अभिन्न मित्र थे। अपने शुरुआती बचपन की यादों में इन दो लोगों के बारे में मुझे सबसे अच्छी तरह याद है, दोनों अपनी पारंपरिक वेशभूषा में होते और आध्यात्मिक मामलों पर चर्चाएँ करते रहते। जब मैं प्रश्न पूछने लायक बड़ा हुआ तो मैंने पिताजी से नमाज की प्रासंगिकता के बारे में पूछा। पिताजी ने मुझे बताया कि नमाज में रहस्यमय कुछ भी नहीं है। नमाज से लोगों के बीच भाईचारे की भावना संभव हो पाती है। वे कहते—'जब तुम नमाज पढ़ते हो तो तुम अपने शरीर से इतर ब्रह्मांड का एक हिस्सा बन जाते हो; जिसमें दौलत, आयु, जाति या धर्म-पंथ का कोई भेदभाव नहीं होता।'

मेरे पिताजी अध्यात्म की जटिल अवधारणाओं को भी तमिल में बहुत ही सरल ढंग से समझा देते थे। एक बार उन्होंने मुझसे कहा, 'खुद उनके वक्त में, खुद उनके स्थान पर, जो वे वास्तव में हैं और जिस अवस्था में पहुँचे हैं—अच्छी या बुरी, हर इनसान भी उसी तरह दैवी शक्ति रूपी ब्रह्मांड में उसके एक विशेष हिस्से के रूप में होता है तो हम संकटों, दुःखों या समस्याओं से क्यों घबराएँ? जब संकट या दुःख आएँ तो उनका कारण जानने की कोशिश करो। विपत्ति हमेशा आत्मविश्लेषण के अवसर प्रदान करती है।'

'आप उन लोगों को यह बात क्यों नहीं बताते जो आपके पास मदद और सलाह माँगने के लिए आते हैं?' मैंने पिताजी से पूछा। उन्होंने अपने हाथ मेरे कंधों पर रखे और मेरी आँखों में देखा। कुछ क्षण वे चुप रहे, जैसे वे मेरी समझ की

क्षमता जाँच रहे हों। फिर धीमे और गहरे स्वर में उन्होंने उत्तर दिया। पिताजी के इस जवाब ने मेरे भीतर नई ऊर्जा और अपरिमित उत्साह भर दिया—

'जब कभी इनसान अपने को अकेला पाता है तो उसे एक साथी की तलाश होती है, जो स्वाभाविक ही है। जब इनसान संकट में होता है तो उसे किसीकी मदद की जरूरत होती है। जब वह अपने को किसी गतिरोध में फँसा पाता है तो उसे चाहिए होता है ऐसा साथी जो बाहर निकलने का रास्ता दिखा सके। बार-बार तड़पानेवाली हर तीव्र इच्छा एक प्यास की तरह होती है। मगर हर प्यास को बुझानेवाला कोई-न-कोई मिल ही जाता है। जो लोग अपने संकट की घड़ियों में मेरे पास आते हैं, मैं उनके लिए अपनी प्रार्थनाओं के जरिए ईश्वरीय शक्तियों से संबंध स्थापित करने का माध्यम बन जाता हूँ। हालाँकि हर जगह, हर बार यह सही नहीं होता और न ही कभी ऐसा होना चाहिए।'

मुझे याद है, पिताजी की दिनचर्या पौ फटने के पहले ही सुबह चार बजे नमाज पढ़ने के साथ शुरू हो जाती थी। नमाज के बाद वे हमारे नारियल के बाग जाया करते। बाग घर से करीब चार मील दूर था। करीब दर्जन भर नारियल कंधे पर लिये पिताजी घर लौटते और उसके बाद ही उनका नाश्ता होता। पिताजी की यह दिनचर्या जीवन के छठे दशक के आखिर तक बनी रही।

मैंने अपनी विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी की सारी जिंदगी में पिताजी की बातों का अनुसरण करने की कोशिश की है। मैंने उन बुनियादी सत्यों को समझने का भरसक प्रयास किया है, जिन्हें पिताजी ने मेरे सामने रखा और मुझे इस संतुष्टि का आभास हुआ कि ऐसी कोई दैवी शक्ति जरूर है जो हमें भ्रम, दु:खों, विषाद और असफलता से छुटकारा दिलाती है तथा सही रास्ता दिखाती है।

जब पिताजी ने लकड़ी की नौकाएँ बनाने का काम शुरू किया, उस समय मैं छह साल का था। ये नौकाएँ तीर्थयात्रियों को रामेश्वरम् से धनुषकोडि (सेथुक्काराई भी कहा जाता है) तक लाने-ले जाने के काम आती थीं। एक स्थानीय ठेकेदार अहमद जलालुद्दीन के साथ पिताजी समुद्र तट के पास नौकाएँ बनाने लगे। बाद में अहमद जलालुद्दीन की मेरी बड़ी बहन जोहरा के साथ शादी हो गई थी। नौकाओं को आकार लेते देखते वक्त मैं काफी अच्छे तरीके से गौर करता था। पिताजी का कारोबार काफी अच्छा चल रहा था। एक दिन सौ मील प्रति घंटे की रफ्तार से हवा चली और समुद्र में तूफान आ गया। तूफान में सेथुक्काराई के कुछ लोग और हमारी नावें बह गईं। उसीमें पामबान पुल भी टूट गया और यात्रियों से भरी ट्रेन दुर्घटनाग्रस्त हो गई। तब तक मैंने सिर्फ समुद्र की खूबसूरती को ही देखा था।

उसकी अपार एवं अनियंत्रित ऊर्जा ने मुझे हतप्रभ कर दिया।

जब तक नाव की यह कहानी बेवक्त डूबी, उम्र में काफी फर्क होने के बावजूद अहमद जलालुद्दीन मेरे अंतरंग मित्र बन गए। वह मुझसे करीब पंद्रह साल बड़े थे और मुझे 'आजाद' कहकर पुकारा करते थे। हम दोनों रोजाना शाम को दूर तक साथ घूमने जाया करते। हम मसजिदवाली गली से निकलते और समुद्र के रेतीले तट पर चल पड़ते। मैं और जलालुद्दीन प्रायः आध्यात्मिक विषयों पर बातें करते। एक प्रमुख तीर्थस्थल होने की वजह से रामेश्वरम् का यह वातावरण हमारी आध्यात्मिक चर्चाओं में और भी प्रेरक सिद्ध होता। रास्ते में हमारा पहला पड़ाव शिव मंदिर हुआ करता था। इस मंदिर की हम उतनी ही श्रद्धा से परिक्रमा करते जितनी श्रद्धा से देश के किसी हिस्से से आया कोई भी तीर्थयात्री करता। और इस परिक्रमा के बाद हम अपने शरीर को बहुत ही ऊर्जावान महसूस करते।

जलालुद्दीन ईश्वर के बारे में ऐसी बातें किया करते जैसे ईश्वर के साथ उनकी कामकाजी भागीदारी हो। वह ईश्वर के समक्ष अपने सारे संदेह इस प्रकार रखते जैसे वह उनका निराकरण पूरी तरह कर देगा। मैं जलालुद्दीन की ओर एकटक देखता रहता और फिर देखता मंदिर के चारों ओर जमा श्रद्धालुओं-तीर्थयात्रियों की उस भीड़ को भी, जो समुद्र में डुबकियाँ लगा रही होती और फिर पूरी धार्मिक रीतियों से पूजा-पाठ करती तथा उसी अज्ञात के प्रति अपने आदर भाव से प्रार्थना करती जिसे हम निराकार सर्वशक्तिमान मानते थे। मुझे इसमें कभी संदेह नहीं रहा कि मंदिर में की गई प्रार्थना जहाँ, जिस तरह पहुँचती है ठीक उसी तरह हमारी मसजिद में पढ़ी गई नमाज भी वहीं जाकर पहुँचती है। मुझे आश्चर्य सिर्फ तब होता जब जलालुद्दीन ईश्वर से विशेष तरह का जुड़ाव कायम कर लेने की बात कहते। पारिवारिक परिस्थितियों के कारण जलालुद्दीन की स्कूली शिक्षा कोई बहुत ज्यादा नहीं हुई थी। यही एक कारण रहा, जिसकी वजह से जलालुद्दीन मुझे पढ़ाई के प्रति हमेशा उत्साहित करते रहते थे और मेरी सफलताओं से प्रसन्न होते थे। पढ़ाई से वंचित रह जाने की हलकी सी भी पीड़ा की झलक मुझे जलालुद्दीन में कभी देखने को नहीं मिली। जिंदगी में उन्हें जो कुछ भी मिला वह उसके प्रति हमेशा कृतज्ञ रहे।

प्रसंगवश मुझे यहाँ यह भी उल्लेख कर देना चाहिए कि पूरे इलाके में सिर्फ जलालुद्दीन ही थे, जो अंग्रेजी में लिख सकते थे। जिसे भी जरूरत होती, चाहे वह अर्जी हो या और कुछ, जलालुद्दीन उसे अंग्रेजी में लिख देते। मेरे परिचितों में, चाहे मेरे परिवार में हो या आस-पड़ोस में, जलालुद्दीन के बराबर शिक्षा का स्तर

किसीका भी नहीं था—और न ही किसीको उनके बराबर बाहरी दुनिया के बारे में पता था। जलालुद्दीन मुझे हमेशा शिक्षित व्यक्तियों, वैज्ञानिक खोजों, समकालीन साहित्य और चिकित्सा विज्ञान की उपलब्धियों के बारे में बताते रहते थे। वही थे जिन्होंने मुझे सीमित दायरे से बाहर निकालकर नई दुनिया का बोध कराया।

मेरे बाल्यकाल में पुस्तकें एक दुर्लभ वस्तु की तरह हुआ करती थीं। हमारे यहाँ स्थानीय स्तर पर एक पूर्व क्रांतिकारी या कहिए, उग्र राष्ट्रवादी एस.टी.आर. मानिकम का निजी पुस्तकालय था। उन्होंने मुझे हमेशा पढ़ने के लिए उत्साहित किया। मैं अकसर उनके घर से पढ़ने के लिए किताबें ले आया करता था।

दूसरे जिस व्यक्ति का मेरे बाल जीवन पर गहरा असर पड़ा, वह मेरे चचेरे भाई शम्सुद्दीन थे। वह रामेश्वरम् में अखबारों के एकमात्र वितरक थे। अखबार रामेश्वरम् स्टेशन पर सुबह की ट्रेन से पहुँचते थे, जो पामबन से आती थी। इस अखबार एजेंसी को अकेले शम्सुद्दीन ही चलाते थे। रामेश्वरम् में अखबारों की जुमला एक हजार प्रतियाँ बिकती थीं। इन अखबारों में स्वतंत्रता आंदोलन से संबंधित ताजा खबरें, ज्योतिष से जुड़े संदर्भ और मद्रास (अब चेन्नई) के सर्राफा बाजार के भाव प्रमुखता से होते थे। महानगरीय दृष्टिकोण रखनेवाले कुछ थोड़े से पाठक हिटलर, महात्मा गांधी और जिन्ना के बारे में चर्चाएँ करते; जबकि ज्यादातर पाठकों में चर्चा का विषय सवर्ण हिंदुओं के रूढ़िवाद के खिलाफ पेरियार ई.वी. रामास्वामी द्वारा चलाया जा रहा आंदोलन होता। 'दिनमणि' अखबार की माँग सबसे ज्यादा होती थी। चूँकि अखबार में जो कुछ भी छपा होता, वह मेरी समझ से परे होता, इसलिए शम्सुद्दीन द्वारा ग्राहकों को अखबार बाँटने से पहले मैं सिर्फ अखबार में छपी तसवीरों पर नजर डालकर ही संतोष कर लेता था।

सन् 1939 में जब द्वितीय विश्वयुद्ध छिड़ा तब मैं आठ वर्ष का था। तभी बाजार में इमली के बीजों की अचानक तेज माँग उठी, जिसका कारण मुझे कभी समझ में नहीं आया। मैं इन बीजों को इकट्ठा करता और मसजिदवाली गली में एक परचून की दुकान पर बेच देता। इससे मुझे एक आना रोज मिल जाता था। विश्वयुद्ध की खबरें जलालुद्दीन मुझे बताते रहते थे, जिन्हें बाद में मैं 'दिनमणि' अखबार के शीर्षकों में ढूँढ़ने की कोशिश करता। विश्वयुद्ध का हमारे यहाँ जरा भी असर नहीं था। लेकिन जल्दी ही भारत पर भी मित्र देशों की सेनाओं में शामिल होने का दबाव डाला गया और देश में एक तरह का आपातकाल घोषित कर दिया गया। उसका पहला नतीजा इस रूप में सामने आया कि रामेश्वरम् स्टेशन पर गाड़ी का ठहरना बंद कर दिया गया। ऐसी स्थिति में अखबारों के बंडल रामेश्वरम् और

धनुष्कोडि के बीच रामेश्वरम् रोड पर चलती ट्रेन से गिरा दिए जाते थे। तब शम्सुद्दीन को ऐसे मददगार की तलाश हुई जो अखबारों के बंडल झेलने और गिरे हुए बंडलों को उठाने में उनका हाथ बँटा सके। स्वाभाविक है, मैं ही मददगार बना। इस तरह शम्सुद्दीन से मुझे अपनी पहली तनख्वाह मिली। आधी शताब्दी गुजर जाने के बाद आज भी मैं अपने द्वारा कमाई पहली तनख्वाह पर गर्व करता हूँ।

हर बच्चा एक विशेष आर्थिक, सामाजिक और भावनात्मक परिवेश में कुछ वंशागत गुणों के साथ जन्म लेता है, फिर संस्कारों के अनुरूप उसे ढाला जाता है। मुझे अपने पिताजी से विरासत के रूप में ईमानदारी और आत्मानुशासन मिला तथा माँ से ईश्वर में विश्वास और करुणा का भाव। यही गुण मेरे तीनों भाई-बहनों को भी विरासत में मिले। लेकिन मैंने जलालुद्दीन और शम्सुद्दीन के साथ अपना जो समय गुजारा, उसका मेरे बचपन में एक अद्वितीय योगदान रहा और इसीके रहते मेरे जीवन में सारे बदलाव आए। स्कूली शिक्षा नहीं होने के बाद भी जलालुद्दीन एवं शम्सुद्दीन इतनी सहज बुद्धि के थे और मेरे अकथनीय संदेशों का यों झट से जवाब दे देते थे कि बचपन में मैं बिना किसी हिचकिचाहट के अपनी सृजनात्मकता को उनके बीच रख सका।

बचपन में मेरे तीन पक्के दोस्त थे—रामानंद शास्त्री, अरविंदन और शिवप्रकाशन। ये तीनों ही ब्राह्मण परिवारों से थे। रामानंद शास्त्री तो रामेश्वरम् मंदिर के सबसे बड़े पुजारी पक्षी लक्ष्मण शास्त्री का बेटा था। अलग-अलग धर्म, पालन-पोषण, पढ़ाई-लिखाई को लेकर हममें से किसी भी बच्चे ने कभी भी आपस में कोई भेदभाव महसूस नहीं किया। आगे चलकर रामानंद शास्त्री तो अपने पिता के स्थान पर रामेश्वरम् मंदिर का पुजारी बना, अरविंदन ने तीर्थयात्रियों को घुमाने के लिए टेंपो चलाने का कारोबार कर लिया और शिवप्रकाशन दक्षिण रेलवे में खान-पान का ठेकेदार हो गया।

प्रतिवर्ष होनेवाले श्री सीता-राम विवाह समारोह के दौरान हमारा परिवार विवाहस्थल तक भगवान् श्रीराम की मूर्तियाँ ले जाने के लिए विशेष प्रकार की नावों का बंदोबस्त किया करता था। यह विवाहस्थल तालाब के बीचोबीच स्थित था और इसे 'रामतीर्थ' कहते थे। यह हमारे घर के पास ही था। मेरी माँ और दादी घर के बच्चों को सोते समय 'रामायण' के किस्से और पैगंबर मुहम्मद से जुड़ी घटनाएँ सुनाती थीं।

जब मैं रामेश्वरम् के प्राइमरी स्कूल में पाँचवीं कक्षा में था तब एक दिन एक नए शिक्षक हमारी कक्षा में आए। मैं टोपी पहना करता था, जो मेरे मुसलमान होने

का प्रतीक था। कक्षा में मैं हमेशा आगे की पंक्ति में जनेऊ पहने रामानंद शास्त्री के साथ बैठा करता था। नए शिक्षक को एक हिंदू लड़के का मुसलमान लड़के के साथ बैठना अच्छा नहीं लगा। उन्होंने मुझे उठाकर पीछेवाली बेंच पर चले जाने को कहा। मुझे बहुत बुरा लगा। रामानंद शास्त्री को भी यह बहुत खला। मुझे पीछे की पंक्ति में बैठाए जाते देख वह काफी उदास नजर आ रहा था। उसके चेहरे पर जो रुआँसी के भाव थे, उनकी मुझपर गहरी छाप पड़ी।

स्कूल की छुट्टी होने पर हम घर गए और सारी घटना अपने घरवालों को बताई। यह सुनकर लक्ष्मण शास्त्री ने उस शिक्षक को बुलाया और कहा कि उसे निर्दोष बच्चों के दिमाग में इस तरह सामाजिक असमानता एवं सांप्रदायिकता का विष नहीं घोलना चाहिए। हम सब भी उस वक्त वहाँ मौजूद थे। लक्ष्मण शास्त्री ने उस शिक्षक से साफ-साफ कह दिया कि या तो वह क्षमा माँगे या फिर स्कूल छोड़कर यहाँ से चला जाए। उस शिक्षक ने अपने किए व्यवहार पर न सिर्फ दुःख व्यक्त किया बल्कि लक्ष्मण शास्त्री के कड़े रुख एवं धर्मनिरपेक्षता में उनके विश्वास से उस नौजवान शिक्षक में अंततः बदलाव आ गया।

पूरे रामेश्वरम् में विभिन्न जातियों का जो छोटा सा समाज था, वह कई स्तरों में था। इस पृथक्करण के मामले में ये जातियाँ बहुत ही कठोर थीं। मेरे विज्ञान के शिक्षक शिव सुब्रह्मण्य अय्यर कट्टर सनातनी ब्राह्मण थे और उनकी पत्नी घोर रूढ़िवादी थीं। लेकिन वे कुछ-कुछ रूढ़िवाद के खिलाफ हो चले थे। उन्होंने इन सामाजिक रूढ़ियों को तोड़ने के लिए अपनी तरफ से काफी कोशिशें कीं, ताकि विभिन्न वर्गों के लोग आपस में एक-दूसरे के साथ मिल सकें और जातीय असमानता खत्म हो। वे मेरे साथ काफी समय बिताते थे और कहा करते—'कलाम, मैं तुम्हें ऐसा बनाना चाहता हूँ कि तुम बड़े शहरों के लोगों के बीच एक उच्च शिक्षित व्यक्ति के रूप में पहचाने जाओगे।'

एक दिन उन्होंने मुझे खाने पर अपने घर बुलाया। उनकी पत्नी इस बात से बहुत ही परेशान एवं भयभीत थीं कि उनकी पवित्र और धर्मनिष्ठ रसोई में एक मुसलमान युवक को भोजन पर आमंत्रित किया गया है। उन्होंने अपनी रसोई के भीतर मुझे खाना खिलाने से साफ इनकार कर दिया। शिव सुब्रह्मण्य अय्यर अपनी पत्नी के इस रुख से जरा भी विचलित नहीं हुए और न ही उन्हें क्रोध आया। बल्कि उन्होंने खुद अपने हाथ से मुझे खाना परोसा और फिर बाहर आकर मेरे पास ही अपना खाना लेकर बैठ गए। उनकी पत्नी यह सब रसोई के दरवाजे के पीछे खड़ी देखती रहीं। मुझे आश्चर्य हो रहा था कि क्या वे मेरे चावल खाने के तरीके,

पानी पीने के ढंग और खाना खा चुकने के बाद उस स्थान को साफ करने के तरीके में कोई फर्क देख रही थीं। जब मैं उनके घर से खाना खाने के बाद लौटने लगा तो अय्यर महोदय ने मुझे फिर अगले हफ्ते रात के खाने पर आने को कहा। मेरी हिचकिचाहट को देखते हुए वे बोले, 'इसमें परेशान होने की जरूरत नहीं है। एक बार जब तुम व्यवस्था बदल डालने का फैसला कर लेते हो तो ऐसी समस्याएँ सामने आती ही हैं।'

अगले हफ्ते जब मैं शिव सुब्रह्मण्य अय्यर के घर रात्रिभोज पर गया तो उनकी पत्नी ही मुझे रसोई में ले गईं और खुद अपने हाथों से मुझे खाना परोसा।

द्वितीय विश्वयुद्ध खत्म हो चुका था और भारत की आजादी भी बहुत दूर नहीं थी। गांधीजी ने ऐलान किया—'भारतीय स्वयं अपने भारत का निर्माण करेंगे।' पूरे देश में अप्रत्याशित उम्मीदें थीं। मैंने अपने पिताजी से रामेश्वरम् छोड़कर जिला मुख्यालय रामनाथपुरम् जाकर पढ़ाई करने की अनुमति माँगी।

उन्होंने सोचते हुए कहा, 'अबुल! तुम्हें आगे बढ़ने के लिए जाना होगा। तुम्हें अपनी लालसाएँ पूरी करने और आगे बढ़ने के लिए उस जगह चले जाना चाहिए जहाँ तुम्हारी जरूरतें पूरी हो सकती हैं। हमारा प्यार तुम्हें बाँधेगा नहीं और न ही हमारी जरूरतें तुम्हें रोकेंगी।' मेरी हिचकिचाती हुई माँ को उन्होंने खलील जिब्रान का हवाला देते हुए कहा, 'तुम्हारे बच्चे तुम्हारे नहीं हैं। वे तो खुद के लिए जीवन की लालसाओं के बेटे-बेटियाँ हैं। वे तुम्हारे जरिए आते हैं, लेकिन तुमसे नहीं आते। तुम उन्हें अपना प्यार दे सकते हो, लेकिन अपने विचार नहीं। उनके खुद के अपने विचार होते हैं।'

पिताजी हम चारों भाइयों को मसजिद ले गए और पवित्र 'कुरान' से 'अल फातिहा' पढ़कर प्रार्थना की। फिर पिताजी मुझे रामेश्वरम् स्टेशन पर छोड़ने आए और कहा, 'इस जगह तुम्हारा शरीर तो रह सकता है, लेकिन तुम्हारा मन नहीं। तुम्हारे मन को तो कल के उस घर में रहने जाना है जहाँ हममें से कोई भी रामेश्वरम् से वहाँ नहीं जा सकता और न ही सपनों में देख सकता है। मेरे बच्चे, ईश्वर तुम्हें खुश रखें।'

शम्सुद्दीन और अहमद जलालुद्दीन मुझे रामनाथपुरम् के श्वार्ट्ज हाई स्कूल में दाखिल कराने और वहाँ मेरे रहने का बंदोबस्त करने के लिए मेरे साथ आए थे। किसी भी तरह मुझे यहाँ अच्छा नहीं लग रहा था।

रामनाथपुरम् कस्बा समृद्ध होते हुए भी बनावटीपन में जीता समाज था। इसकी आबादी करीब पचास हजार थी। लेकिन रामेश्वरम् जैसी सुसंगति और

सद्भाव यहाँ नहीं था। मुझे घर की बड़ी याद आती और मैं रामेश्वरम् जाने का हर मौका तलाशता रहता। रामनाथपुरम् में पढ़ाई के अच्छे अवसर के बाद भी मैं अपनी माँ की बनाई दक्षिण भारतीय मिठाई 'पोली' की याद नहीं भुला पाता। मेरी माँ 'पोली' की बारह तरह से मिठाइयाँ बना लेती थीं और हर किस्म की मिठाई की अपनी अलग सुगंध एवं स्वाद होता था।

घर की बहुत याद आने के बावजूद मैं नए माहौल में रहकर पिताजी के सपने को साकार करने के प्रति कटिबद्ध था; क्योंकि मेरी सफलता से पिताजी की बहुत बड़ी उम्मीदें जुड़ी थीं। पिताजी मुझे कलक्टर बना देखना चाहते थे और मुझे लगता था कि पिताजी के सपने को साकार करना मेरा फर्ज है। हालाँकि परिवार, सुरक्षा और रामेश्वरम् की सारी सुख-सुविधाएँ मुझसे छूट गई थीं।

जलालुद्दीन मुझसे हमेशा सकारात्मक सोच की शक्ति की बात किया करते थे और जब भी मुझे घर की याद आती या मैं उदास होता तो मैं प्राय: उनकी कही बातों को मन में याद कर लेता। उनके कहे अनुसार मैंने अपने मन के विचारों एवं मस्तिष्क को स्थिर रखने तथा लक्ष्य को पाने के लिए कठोर परिश्रम किया। मैं रामेश्वरम् नहीं लौटा बल्कि अपने घर से और दूर चलता चला गया।

☐

: दो :

रामनाथपुरम् के श्वार्ट्ज हाई स्कूल में मन लग जाने के बाद मेरे भीतर का पंद्रह साल का किशोर बाहर निकल पड़ा। मेरे एक शिक्षक अयादुरै सोलोमन उन उत्सुक छात्रों के लिए एक आदर्श मार्गदर्शक थे जिनके समक्ष उस समय संभावनाओं और विकल्पों की अनिश्चितता थी। वह बहुत ही स्नेही, खुले दिमागवाले व्यक्ति थे और छात्रों का उत्साह बढ़ाते रहते थे। इससे छात्र बहुत ही सुखद महसूस करते थे। सोलोमन कहा करते थे कि एक कुशल शिक्षक से कमजोर छात्र जो सीख पाता है, उसकी तुलना में एक होशियार छात्र कमजोर शिक्षक से कहीं ज्यादा सीख सकता है।

रामनाथपुरम् में रहते हुए अयादुरै सोलोमन से मेरे संबंध एक गुरु-शिष्य के नाते से अलग हटकर काफी प्रगाढ़ हो गए थे। उनके साथ रहते हुए मैंने यह जाना कि व्यक्ति खुद अपने जीवन की घटनाओं पर काफी असर डाल सकता है। अयादुरै सोलोमन कहा करते थे—'जीवन में सफल होने और नतीजों को हासिल करने के लिए तुम्हें तीन प्रमुख शक्तिशाली ताकतों को समझना चाहिए—इच्छा, आस्था और उम्मीदें।' श्री सोलोमन मेरे लिए बहुत ही श्रद्धेय बन गए थे। उन्होंने ही मुझे सिखाया कि मैं जो कुछ भी चाहता हूँ, पहले उसके लिए मुझे तीव्र कामना करनी होगी, फिर निश्चित रूप से मैं उसे पा सकूँगा। मैं खुद अपनी जिंदगी का ही उदाहरण लेता हूँ। बचपन से ही मैं आकाश एवं पक्षियों के उड़ने के रहस्यों के प्रति काफी आकर्षित था। मैं सारस को समुद्र के ऊपर मँडराते और दूसरे पक्षियों को ऊँची उड़ानें भरते देखा करता था। हालाँकि मैं एक बहुत ही साधारण स्थान का लड़का था; लेकिन मैंने निश्चय किया कि एक दिन मैं भी आकाश में ऐसी ही उड़ानें भरूँगा और वास्तव में कालांतर में उड़ान भरनेवाला मैं रामेश्वरम् का पहला बालक निकला।

अयादुरै सोलोमन सचमुच एक महान् शिक्षक थे; क्योंकि वह सभी छात्रों को

उनके भीतर छिपी शक्ति एवं योग्यता का आभास कराते थे। सोलोमन ने मेरे स्वाभिमान को जगाकर एक ऊँचाई दी थी और मुझे—एक ऐसे माता-पिता के बेटे जिन्हें शिक्षा का अवसर नहीं मिल पाया था—यह आश्वस्त कराया कि मैं भी अपनी उन आकांक्षाओं को पूरा कर सकता हूँ जिनकी मैं इच्छा रखता हूँ। वे कहा करते थे—'निष्ठा एवं विश्वास से तुम अपनी नियति बदल सकते हो।'

बात उस समय की है जब मैं चौथी 'फॉर्म' में था। सारी कक्षाएँ स्कूल के अहाते में अलग-अलग झुंडों के रूप में लगा करती थीं। एक दिन मेरे गणित के शिक्षक रामकृष्ण अय्यर एक दूसरी कक्षा को पढ़ा रहे थे। अनजाने में ही मैं उस कक्षा से होकर निकल गया। तुरंत ही एक प्राचीन परंपरावाले तानाशाह गुरु की तरह रामकृष्ण अय्यर ने मुझे गरदन से पकड़ा और भरी कक्षा के सामने मुझे बेंत लगाए। कई महीनों बाद जब गणित में मेरे पूरे नंबर आए तब रामकृष्ण अय्यर ने स्कूल की सुबह की प्रार्थना में सबके सामने यह घटना सुनाई—'मैं जिसकी बेंत से पिटाई करता हूँ वह एक महान् व्यक्ति बनता है। मेरे शब्द याद रखिए, यह छात्र विद्यालय और अपने शिक्षकों का गौरव बनने जा रहा है।' उनके द्वारा की गई यह प्रशंसा क्या एक भविष्यवाणी थी?

श्वार्ट्ज हाई स्कूल से शिक्षा पूरी करने के बाद मैं सफलता हासिल करने के प्रति आत्मविश्वास से सराबोर छात्र था। मैंने एक क्षण भी सोचे बिना और आगे पढ़ाई करने का फैसला कर लिया। उन दिनों हमें व्यावसायिक शिक्षा की संभावनाओं के बारे में कोई जानकारी तो थी नहीं। उच्च शिक्षा का सीधा सा अर्थ कॉलेज जाना समझा जाता था। सबसे नजदीक कॉलेज तिरुचिरापल्ली में था। उन दिनों इसे 'तिरिचनोपोली' कहा जाता था और संक्षेप में 'त्रिची'।

सन् 1950 में इंटरमीडिएट की पढ़ाई के लिए मैंने त्रिची के सेंट जोसेफ कॉलेज में दाखिला ले लिया। परीक्षाओं में डिवीजन लाने की दृष्टि से तो मैं कोई होशियार छात्र था नहीं, लेकिन रामेश्वरम् के अपने उन दो 'उस्तादों'—जलालुद्दीन व शम्सुद्दीन—का मैं शुक्रिया अदा करता हूँ, जिनसे मैंने जो व्यावहारिक ज्ञान हासिल किया उसने मुझे कभी नीचा नहीं देखने दिया।

जब कभी भी मैं त्रिची से रामेश्वरम् लौटता तो मेरे बड़े भाई मुस्तफा कलाम, जो रेलवे स्टेशन रोड पर एक परचून की दुकान चलाते थे, मुझसे थोड़ी-बहुत मदद करवा लेते थे और कुछ-कुछ घंटों के लिए दुकान को मेरे जिम्मे छोड़ जाते थे। मैं तेल, प्याज, चावल और दूसरा हर सामान बेच लेता था। मैंने पाया कि सिगरेट और बीड़ी सबसे ज्यादा बिकनेवाली वस्तुएँ थीं। मुझे ताज्जुब हुआ करता कि गरीब

लोग अपनी कड़ी मेहनत की कमाई को किस तरह धुएँ में उड़ा देते हैं। जब मैं मुस्तफा के यहाँ से खाली हो जाता तो अपने छोटे भाई कासिम मुहम्मद की दुकान चला जाता। वहाँ मैं शंखों एवं सीपियों से बने अनूठे सामान बेचा करता था।

मैं सौभाग्यशाली था कि सेंट जोसेफ कॉलेज में मुझे फादर टी.एन. सेक्युरिया जैसे शिक्षक मिले। वे हमें अंग्रेजी पढ़ाते थे और साथ ही हमारे होस्टल वार्डन भी थे। तीन मंजिले होस्टल में हम करीब सौ छात्र रहते थे। फादर सेक्युरिया रोजाना रात को हाथ में 'बाइबिल' लिये हुए हर लड़के से मिलने आते थे। उनकी ऊर्जा और धैर्य आश्चर्यजनक था। वे हमेशा दूसरों का खयाल रखनेवाले व्यक्ति थे और हर छात्र की पल-पल की जरूरतों को पूरा करते थे। उनके निर्देश पर ही दीपावली के अवसर पर हमारे होस्टल का इंचार्ज (ब्रदर) और मेस के लोग सभी छात्रों के कमरे में जा-जाकर पवित्र स्नान के लिए उन्हें तिल का तेल देते।

मैं सेंट जोसेफ कॉलेज में चार साल रहा। होस्टल में मेरे साथ कमरे में दो लड़के और थे। एक श्रीरंगम के रूढ़िवादी आयंगर परिवार से था और दूसरा केरल का सीरियाई ईसाई था। हम तीनों हमेशा साथ रहते थे और बहुत ही अच्छा समय कटता था। जब मैं कॉलेज के तीसरे साल में था तब मुझे होस्टल में शाकाहारी मेस का सचिव बना दिया गया। एक रविवार को हमने कॉलेज के प्रमुख फादर कलाथिल को दोपहर के भोज पर आमंत्रित किया। भोज में शामिल व्यंजनों में वे चीजें भी शामिल थीं जो पारंपरिक रूप से हमारे परिवारों में बनाई जाती थीं। इसका नतीजा न सिर्फ अप्रत्याशित रहा बल्कि फादर कलाथिल ने हमारी कोशिशों की भूरि-भूरि प्रशंसा की। हमने उनके साथ बहुत ही आनंद के क्षण गुजारे। उन्होंने हमारे साथ बच्चे की तरह निष्कपट एवं आत्मीयता से बातें कीं। हम सबके लिए यह यादगार घटना थी।

सेंट जोसेफ के मेरे शिक्षक कांची परमाचार्य के सच्चे अनुयायी थे, जो 'देने में ही जीवन का सच्चा आनंद है' मत के प्रणेता थे। मेरे गणित के शिक्षकों, प्रो. थोथाथ्री आयंगर और प्रो. सूर्यनारायण शास्त्री, के कॉलेज परिसर में साथ-साथ टहलने की जीवंत स्मृति मेरे लिए हमेशा प्रेरणा का स्रोत बनी रही।

जब मैं सेंट जोसेफ कॉलेज के अंतिम वर्ष में था तभी मुझे अंग्रेजी साहित्य पढ़ने का चस्का लगा। मैंने टॉल्सटॉय, स्कॉट और हार्डी को पढ़ना शुरू किया। उसके बाद दर्शन की ओर झुकाव हुआ तथा उसपर काम भी किया। यह वह समय था जब भौतिकशास्त्र में मेरी गहरी रुचि हो गई थी।

सेंट जोसेफ के मेरे भौतिकी के शिक्षकों प्रो. चिन्ना दुरै और प्रो. कृष्णमूर्ति ने

परमाणवीय भौतिकी के अध्यायों में मुझे पदार्थों के अर्द्धजीवन काल की अवधारणा और उनके रेडियोएक्टिव क्षय के बारे में ज्ञान कराया। रामेश्वरम् में मेरे विज्ञान के शिक्षक शिव सुब्रह्मण्य अय्यर ने मुझे कभी यह नहीं बताया था कि परमाणु अस्थिर होते हैं और एक निश्चित समय के बाद ये दूसरे परमाणु में परिवर्तित हो जाते हैं। यह सब मैं पहली बार ही जान रहा था। लेकिन जब उन्होंने मुझे हर पल कड़ा परिश्रम करने की बात कही, क्योंकि सभी यौगिक पदार्थों का क्षय अपरिहार्य है, तो मुझे लगा, क्या वे एक ही तथ्य के बारे में बात नहीं कर रहे थे। मुझे आश्चर्य हुआ कि कुछ लोग विज्ञान को इस तरह से क्यों देखते हैं, जो व्यक्ति को ईश्वर से दूर ले जाए। जैसाकि मैंने इसमें देखा कि हृदय के माध्यम से ही हमेशा विज्ञान तक पहुँचा जा सकता है। मेरे लिए विज्ञान हमेशा आध्यात्मिक रूप से समृद्ध होने और आत्मज्ञान का रास्ता रहा।

मैं ब्रह्मांड विज्ञान के बारे में खूब उत्सुकता से किताबें पढ़ा करता हूँ तथा खगोलीय पिंडों के बारे में अधिक-से-अधिक जानने में मुझे बहुत आनंद आता है। कई मित्र मुझसे अंतरिक्ष उड़ानों से संबंधित प्रश्न पूछ लेते हैं और कई बार चर्चा ज्योतिष में चली जाती है। ईमानदारी से मैं वाकई अभी तक इस बात का कारण नहीं समझ पाया हूँ कि क्यों लोग ऐसा मानते हैं कि हमारे सौर परिवार के दूरस्थ ग्रहों का जीवन की रोजमर्रा की घटनाओं पर प्रभाव पड़ता है। एक कला के रूप में मैं ज्योतिष के खिलाफ नहीं हूँ। लेकिन अगर विज्ञान की आड़ में इसे गलत तरीके से स्वीकार किया जाता है तो मैं इसे नहीं मानता। मुझे नहीं पता कि ग्रहों, नक्षत्रों, तारामंडलों और यहाँ तक कि उपग्रहों के बारे में इन मिथकों ने कैसे जन्म लिया। ब्रह्मांडीय पिंडों की अत्यधिक शुद्ध गति की जटिल गणनाओं में हेर-फेर करके यदि व्यक्तिपरक नतीजे निकाले जाएँ तो ये मुझे अतार्किक लगते हैं। जैसा मैं देखता हूँ कि पृथ्वी ही सबसे शक्तिशाली एवं ऊर्जावान ग्रह है। जॉन मिल्टन ने इसे 'पैराडाइज लॉस्ट' पुस्तक-VIII में बड़ी ही खूबसूरती से व्यक्त किया है—

'होने दो सूर्य को
दुनिया का केंद्र
और सितारों की धुरी।
मेरी यह धरती
कितनी गरिमामय
धीमे-धीमे घूमे
तीन अलग धुरियों पर।'

इस ग्रह पर आप जहाँ भी जाते हैं वहाँ गति और जीवन है, वैसे ही निर्जीव वस्तुओं जैसे चट्टानों, धातुओं, लकड़ी, चिकनी मिट्टी में भी आंतरिक गतिशीलता विद्यमान है। हर नाभिक के चारों ओर इलेक्ट्रॉन चक्कर काट रहे हैं। नाभिक इन इलेक्ट्रॉनों को अपने चारों ओर बाँधे रखता है। इसीकी प्रतिक्रिया में इलेक्ट्रॉन उसके चारों ओर घूमते रहते हैं और यही इस गति का स्रोत है। इलेक्ट्रॉनों को बाँधे रखनेवाले यही विद्युत् बल इन्हें ज्यादा-से-ज्यादा करीब लाने की भी कोशिश करते हैं। इलेक्ट्रॉन एक निश्चित ऊर्जावाले, उस पृथक् कण के रूप में है जो नाभिक से बँधा हुआ है। इलेक्ट्रॉनों पर नाभिक की पकड़ जितनी मजबूत होगी, कक्षा में इलेक्ट्रॉनों की गति भी उतनी ही तीव्र होगी। वास्तव में यह गति एक हजार किलोमीटर प्रति सेकंड तक की होती है। उस अत्यधिक वेग के कारण परमाणु एक ठोस गोले की भाँति नजर आता है; जैसे तेज गति से घूमता पंखा एक थाली की तरह दिखता है। परमाणुओं को और संपीडित करना या कहें, एक-दूसरे के और करीब लाना बहुत ही मुश्किल है—और यही किसी पदार्थ का भौतिक स्वरूप होता है। इस प्रकार हर ठोस वस्तु के भीतर काफी खाली स्थान होता है और हर स्थिर वस्तु के भीतर बड़ी हलचल होती रहती है। यह ठीक उसी तरह है जैसे हमारे जीवन के प्रत्येक क्षण में पृथ्वी पर भगवान् शिव का शाश्वत नृत्य हो रहा होता है।

सेंट जोसेफ कॉलेज में जब मैंने बी.एस-सी. में दाखिला लिया था तब मैं उच्च शिक्षा के किसी और विकल्प के बारे में बिलकुल अनभिज्ञ था। न ही भविष्य के अवसरों के बारे में मेरे पास वे सूचनाएँ थीं जो एक विज्ञान के विद्यार्थी के पास होनी चाहिए। बी.एस-सी. के बाद ही मुझे यह महसूस हो गया था कि भौतिकी मेरा विषय नहीं है। मुझे अपना सपना पूरा करने के लिए इंजीनियरिंग में जाना था। इंजीनियरिंग में तो मैं इंटरमीडिएट की पढ़ाई पूरी करके भी जा सकता था। दुर्घटना से देर भली—मैंने खुद को ही समझाया और मद्रास इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी (एम.आई.टी.) में दाखिले के लिए चक्कर लगाने शुरू किए। उस समय दक्षिण भारत में तकनीकी शिक्षा के लिए मशहूर यह एक विशिष्ट संस्थान था।

संस्थान के चयनित उम्मीदवारों की सूची में मेरा नाम तो आ गया, लेकिन इस प्रसिद्ध संस्थान में दाखिला लेना काफी खर्चीला था। इसके लिए करीब एक हजार रुपए की जरूरत थी और मेरे पिताजी के पास इतना पैसा कभी हुआ ही नहीं। ऐसे वक्त में मुझे पढ़ाने के लिए मेरी बहन जोहरा आगे आईं और मेरी फीस के लिए उन्होंने अपने हाथों के कड़े तथा हार गिरवी रख दिए। मुझे शिक्षित देखने का उनमें जो दृढ़ संकल्प था और मेरी योग्यताओं एवं क्षमताओं को लेकर उनका

जो भरोसा था, वह मुझे गहराई तक छू गया। मैंने अपनी कमाई से ही उनके गिरवी जेवरों को छुड़ाने की ठानी। उस समय मेरे सामने पैसा कमाने का सिर्फ यही रास्ता था कि मैं कड़ी मेहनत करूँ और छात्रवृत्ति हासिल करूँ। मैं पूरी मेहनत एवं लगन से पढ़ाई में जुट गया।

एम.आई.टी. में मुझे सबसे ज्यादा उन दो विमानों ने आकर्षित किया जो वहाँ उड़ान संबंधी मशीनों की विभिन्न कार्यप्रणालियाँ समझाने के लिए प्रदर्शन के तौर पर रखे गए थे। इन विमानों के प्रति मुझे गहरा लगाव हो गया। दूसरे छात्रों के होस्टल लौट जाने के बाद भी मैं उनके पास बहुत देर तक बैठा रहता। एक पक्षी की तरह स्वतंत्र रूप से आकाश में विचरण करने की मनुष्य की इच्छा की मन-ही-मन प्रशंसा करता रहता। पहला साल पूरा कर लेने के बाद जब मुझे एक विशेष विषय का चुनाव करना था तो मैंने वैमानिकी (एयरोनॉटिकल) इंजीनियरिंग की दिशा चुनी और इसे ही अपना विशेष विषय बनाया। अब मेरे दिमाग में लक्ष्य एकदम स्पष्ट था—मुझे विमान उड़ाना था। अपने भीतर आग्रहिता की कमी के बारे में जानते हुए भी मैंने यह निश्चय कर लिया था। शुरू से ही विनम्र स्वभाव होने की वजह से मुझमें यह कमी थी कि मैं आग्रही या दावा करनेवाला नहीं था। इसी दौरान मैंने अलग-अलग तरह के लोगों से संवाद कायम करने की कोशिशें कीं। इस दौरान मुझे कई बाधाएँ आईं, निराशा हुई और मन में भटकाव आया; लेकिन पिताजी के प्रेरणास्पद वाक्यों ने मुश्किलों के इस दौर में भी मुझे डिगने नहीं दिया। वे कहते थे—'वह, जो दूसरों को समझता है, वही सीख लेता है। लेकिन बुद्धिमान वह है जो खुद स्वयं को जान लेता है। बुद्धि के बिना सीखा गया ज्ञान किसी काम का नहीं होता।'

एम.आई.टी. में पढ़ाई के दौरान तीन शिक्षकों ने मेरी अप्रकट सोच को मूर्त रूप दिया। उन तीनों के संयुक्त योगदान से ही वह नींव पड़ी, जो आगे चलकर मेरा व्यावसायिक कार्यक्षेत्र बनी। वे तीन शिक्षक थे—प्रो. स्पांडर, प्रो. के.ए.वी. पनदलाई और प्रो. नरसिंह राव। इनमें प्रत्येक शिक्षक अलग-अलग क्षेत्रों में विलक्षण व्यक्तित्व के धनी थे। वे तीनों ही अपनी प्रतिभा एवं अथक उत्साह से छात्रों की बौद्धिक भूख शांत करने के काम में लगन से लगे रहते थे।

प्रो. स्पांडर ने मुझे तकनीकी वैमानिकी गतिकी विषय पढ़ाया। वे ऑस्ट्रिया के थे और वैमानिकी इंजीनियरिंग का उनको खासा अनुभव था। द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान वह नाजियों द्वारा बंदी बना लिये गए थे और उन्हें एक नजरबंद शिविर में कैद रखा गया था। स्वाभाविक था कि जर्मनों के प्रति उनमें घृणा भर गई। संयोग से

वैमानिकी विभाग के प्रमुख एक जर्मन व्यक्ति—प्रो. वॉल्टर रेपेंथिन—थे। उस समय एम.आई.टी. के डायरेक्टर डॉ. कुर्त टैंक हुआ करते थे। वे वैमानिकी इंजीनियरिंग के क्षेत्र में एक जानी-मानी हस्ती थे और जर्मनी के एक सीटवाले लड़ाकू विमान फोक वुल्फ (एफ.डब्ल्यू. 190) का डिजाइन उन्होंने ही तैयार किया था। द्वितीय विश्वयुद्ध के समय का यह असाधारण लड़ाकू विमान था। बाद में डॉ. टैंक बंगलौर स्थित हिंदुस्तान एयरोनॉटिकल लिमिटेड (एच.ए.एल.) में चले गए और वहाँ उन्होंने भारत का पहला लड़ाकू विमान एच.एफ.-24 मारुत तैयार किया।

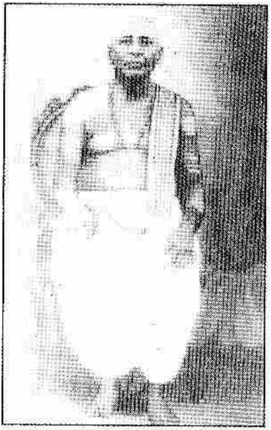
इन संकटों एवं नाजियों के कष्टों के बावजूद प्रो. स्पांडर ने अपने व्यक्तित्व को बचाए रखा और उच्च व्यावसायिक मानदंडों को भी बनाए रखा। वे हमेशा शांत रहते थे और ऊर्जावान थे। स्वयं पर उनका पूरा नियंत्रण था। वे नई-से-नई तकनीक के बारे में पूरी जानकारी रखते थे और अपने विद्यार्थियों से भी यही उम्मीद रखते थे। वैमानिकी इंजीनियरिंग को अपना विषय चुनने से पहले मैंने उनसे विचार-विमर्श किया था। उन्होंने मुझसे कहा कि किसीको भविष्य को लेकर कभी भी चिंता नहीं करनी चाहिए; बल्कि इसके बजाय ज्यादा महत्त्वपूर्ण बात तो यह है कि पढ़ाई के लिए जो भी क्षेत्र चुना है, उस विषय में पूरी मेहनत, उत्साह और धैर्य के साथ पढ़ाई करनी चाहिए। जैसाकि प्रो. स्पांडर देखा करते थे, भारतीयों के साथ संकट शैक्षिक अवसरों की कमी या औद्योगिक बुनियादी ढाँचे का नहीं था, संकट तो अनुशासन और अपने चुनाव को युक्तिसंगत बनाने के बीच अलग करके देख पाने में नाकाम रहने का था। वैमानिकी ही क्यों, इलेक्ट्रिकल इंजीनियरिंग क्यों नहीं? मैकेनिकल इंजीनियरिंग क्यों नहीं? मैं खुद इंजीनियरिंग के सभी नए छात्रों से यह कहना चाहूँगा कि जब भी वे विशेषज्ञता हासिल करने के लिए विषय का चुनाव करें तो उसमें देखने लायक जरूरी बात यह है कि उस विषय में उनकी भीतर से रुचि और अंत:प्रेरणा भी है कि नहीं।

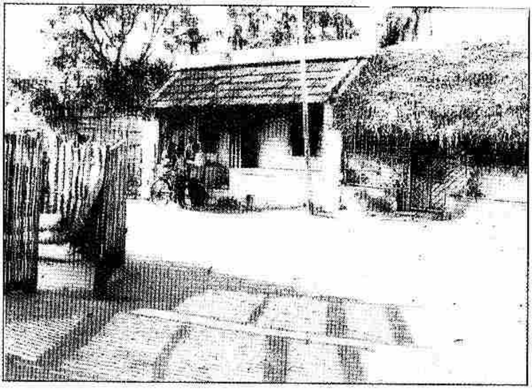
प्रो. के.ए.वी. पनदलाई ने मुझे एयरो-स्ट्रक्चर डिजाइन एंड एनालिसिस विषय पढ़ाया था। वे एक बहुत ही खुशमिजाज, दोस्ताना और उत्साही शिक्षक थे और हर साल अपने अध्यापन के तरीके में एक नयापन लेकर आते थे। ये प्रो. पनदलाई ही थे, जिन्होंने स्ट्रक्चरल इंजीनियरिंग के छिपे हुए तथा गोपनीय पहलुओं को पूरी तरह खोलकर हमारे समक्ष रखा। आज भी मेरा मानना है कि जो भी प्रो. पनदलाई के पास पढ़ा है, वह इस बात से पूरी तरह सहमत होगा कि प्रो. पनदलाई एक महान् बुद्धिजीवी एवं अध्येता थे; लेकिन उनमें घमंड या हेकड़ी नाम की कोई चीज नहीं थी। उनके छात्र कक्षा में उनसे तमाम बिंदुओं पर असहमति व्यक्त करने



▲ पिता जैनुलाब्दीन।

▼ पक्षी लक्ष्मण शास्त्री।

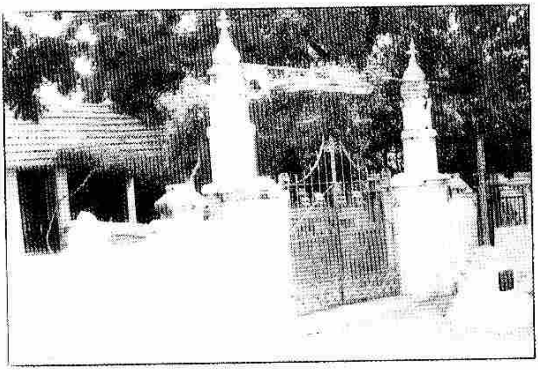




▲मसजिदवाली गली स्थित मेरे उस मकान का परिदृश्य, जहाँ मेरा बचपन गुजरा।

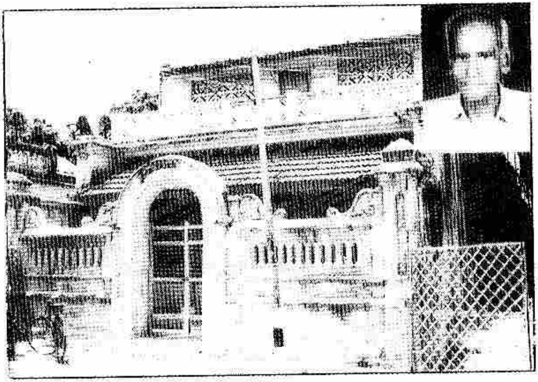
▼भगवान् शिव का वह प्राचीन मंदिर, जहाँ हजारों श्रद्धालु दूर-दूर से आते थे। इसी गली में स्थित अपने छोटे भाई कासिम मुहम्मद की दुकान पर मैं प्रायः आकर उसकी मदद करता था।





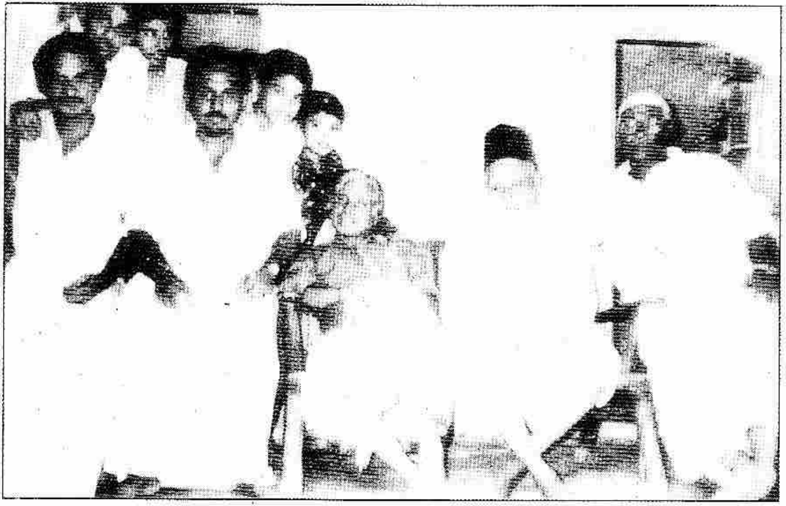
▲ हमारे मुहल्ले की वह पुरानी मसजिद, जहाँ मेरे पिताजी मुझे और मेरे भाइयों को शाम की नमाज के लिए ले जाते थे।

▼ मेरे बड़े भाई मुस्तफा कलाम के मित्र एस.टी.आर. मणिक्कम (इनसेट में) का घर जिसमें उन्होंने अनेक उपयोगी पुस्तकें संगृहीत कर रखी थीं। और वहीं से मैं पढ़ने के लिए पुस्तकें लेता था।

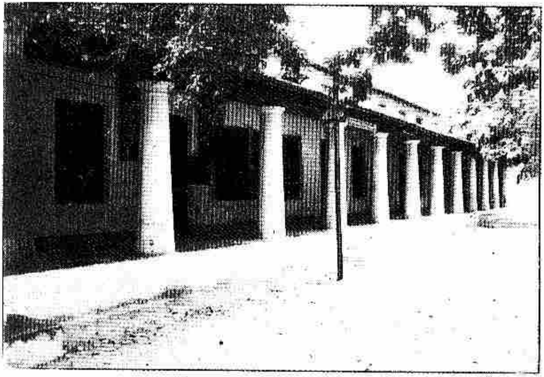




▲ इंजीनियरिंग पढ़ते हुए मेरे द्वारा प्रयुक्त टी स्क्वायर की ओर इशारा करते हुए मेरे भाई।

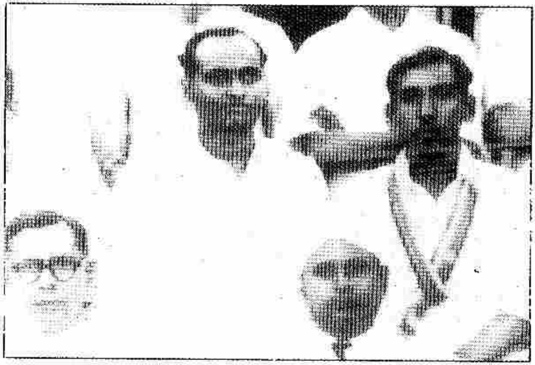


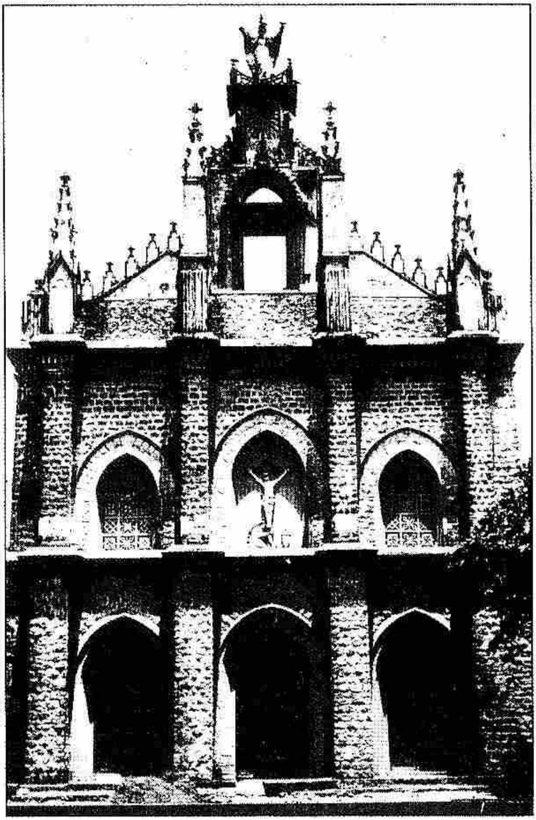
▲ परिवार के सदस्यों का मिलन।



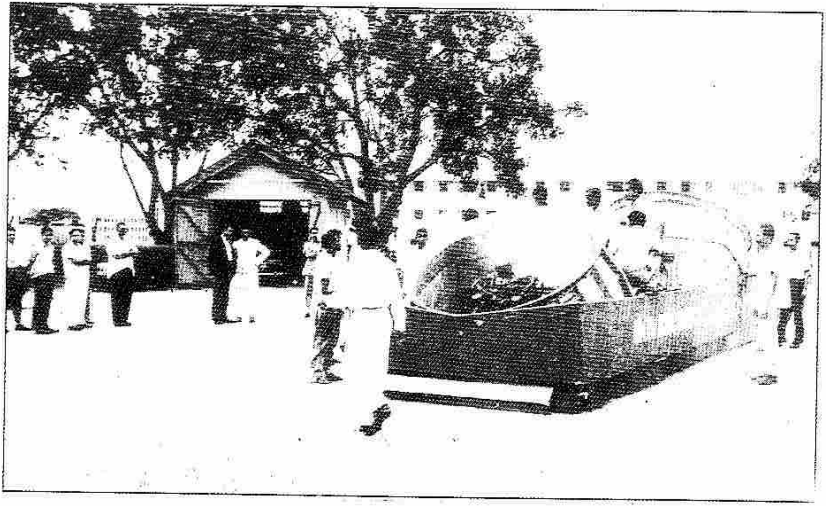
▲ रामनाथपुरम् के श्वार्ट्ज हाई स्कूल का बाहरी दृश्य। दीवार पर लगे पट्ट पर अंकित है—'अपना समय व्यर्थ न जाने दो। जो वक्त बीत गया उसे सोना देकर भी वापस नहीं खरीद सकते।'

▼ श्वार्ट्ज हाई स्कूल के मेरे गुरुजन—अयादुरै सोलोमन (बाएँ खड़े हुए) तथा रामकृष्ण अय्यर (दाहिनी ओर बैठे हुए)।





▲ थुंबा के ईसाई समुदाय द्वारा प्रदत्त वह चर्च, जो स्पेस रिसर्च सेंटर का प्रथम कार्यालय बना।



▲ ए.डी.ई. बंगलौर द्वारा विकसित दो इंजनोंवाले हॉवरक्राफ्ट 'नंदी' का प्रथम प्रारूप।

के लिए स्वतंत्र थे।

प्रो. नरसिंह राव एक गणितज्ञ थे और हमें सैद्धांतिक वैमानिकी गतिकी पढ़ाते थे। तरल गतिकी पढ़ाने का उनका तरीका मुझे अब तक याद है। उनकी क्लास में पढ़ने के बाद मैंने गणितीय भौतिकी को दूसरा विषय बनाने का मन बनाया। अकसर मुझसे कहा जाता था कि वैमानिकी डिजाइनों की समीक्षा के लिए मेरे नेफे में एक शल्य चिकित्सा औजार (सर्जिकल नाइफ) रहता है। अगर प्रो. राव की कृपा नहीं होती और वैमानिकी गतिकी के समीकरणों का हल निकालने के लिए वे मुझे प्रेरित नहीं करते तो मेरे पास यह विलक्षण औजार नहीं होता।

वैमानिकी एक बहुत ही मजेदार एवं रुचिकर विषय है, जिसमें एक उन्मुक्तता है, आजादी है। आजादी और पलायन, गति और हलचल तथा सरकने एवं प्रवाह के बीच एक बड़ा जो फर्क है, वही इस विज्ञान की गोपनीयता है। मेरे शिक्षकों ने मुझे इन सच्चाइयों के रहस्य बताए। वैमानिकी के बारे में शिक्षकों ने मेरी उत्सुकता और बढ़ा दी। उनकी बौद्धिकता के उत्ताप, विचारों की शुद्धता तथा धैर्य ने मुझे तरल गतिकी के गंभीर अध्ययन में काफी मदद पहुँचाई। तरल गतिकी के इस अध्ययन में संपीडित मध्यम गति, प्रघाती तरंगों एवं प्रघात का विकास, बढ़ती गति पर प्रवाहित द्रव का पृथक्करण, प्रघात रोकना और प्रघात उत्पन्न करना जैसे विषय शामिल थे।

धीरे-धीरे मेरे मस्तिष्क में ढेर सारी जानकारियाँ जमा हो गईं। हवाई जहाजों के नए-नए रूप विभिन्न तरह से सामने आने लगे—द्वितल विमान (बाई प्लेन), एक तलीय विमान (मोनो प्लेन), बिना पिछले हिस्सेवाले विमान (टेललैस प्लेन), डेल्टा विंग प्लेन। इन सबकी महत्ता मेरे लिए बढ़ती जा रही थी। मेरे तीनों शिक्षक, जो अपने-अपने विषय के दिग्गज थे, मेरा इस बारे में ज्ञान और बढ़ाने में मदद करते।

मेरा तीसरा और एम.आई.टी. में अंतिम वर्ष एक संक्रमण वर्ष के रूप में था तथा मेरे आनेवाले जीवन में इसका गहरा असर पड़ना था। उन दिनों पूरे देश में राजनीतिक समझ बनवाने और औद्योगिक प्रयासों की एक नई बयार आई हुई थी। मैंने ईश्वर में अपने विश्वास की परीक्षा ली और यह जानना चाहा कि क्या यह वैज्ञानिक सोच प्रगति के तरीके में कहीं उचित साबित हो सकती है। इसके बाद जो स्वीकार्य विचार था, वह यह कि सिर्फ वैज्ञानिक विधियाँ ही ज्ञान का एकमात्र सही रास्ता हैं। मुझे आश्चर्य हुआ, यदि ऐसा है तो क्या पदार्थ ही अंततः वास्तविकता और आध्यात्मिक प्रक्रिया है, न कि पदार्थ की अभिव्यक्ति? क्या सभी नैतिक

मूल्य आपस में एक-दूसरे से जुड़े हैं ?

कोर्स पूरा होने के बाद मुझे नीचे आकर करीब से हमला करनेवाले लड़ाकू विमान का डिजाइन तैयार करने की परियोजना में लगा दिया गया। इस परियोजना में मेरे साथ चार और साथी थे। मैंने वायुगतिकी डिजाइन को तैयार करने और उसकी ड्राइंग बनाने की जिम्मेदारी ली थी। जबकि मेरी टीम के साथियों को विमान के प्रणोदन, संरचना, नियंत्रण और उपकरणों के डिजाइन तैयार करने का काम सौंपा गया था। एक दिन मेरे डिजाइन शिक्षक प्रो. श्रीनिवासन ने, जो उस समय एम.आई.टी. के निदेशक भी थे, मेरे काम की समीक्षा की और इसे निराशाजनक बताते हुए इसपर अपना असंतोष व्यक्त किया। काम में देरी के लिए मैंने उनसे कई बार माफी माँगी और अपनी सफाई दी; लेकिन प्रो. श्रीनिवासन ने एक नहीं सुनी। आखिरकार काम पूरा कर लेने के लिए मैंने उनसे एक महीने का वक्त माँगा। कुछ क्षण के लिए उन्होंने मेरी ओर देखा और बोले, 'देखो, नौजवान, आज शुक्रवार है। मैं तुम्हें तीन दिन का वक्त देता हूँ। अगर सोमवार सुबह तक मुझे यह ड्राइंग नहीं मिली तो तुम्हारी छात्रवृत्ति रोक दी जाएगी।' मेरे मुँह से शब्द नहीं निकले। छात्रवृत्ति ही मेरा सबकुछ थी और अगर यह वापस ले ली जाती तो मैं एकदम असहाय हो जाता। मेरे सामने कोई दूसरा रास्ता नहीं था, सिवाय इसके कि मैं उनके निर्देश के अनुसार अपना काम पूरा कर लेता। उस रात मैंने खाना नहीं खाया और रात भर ड्राइंग बोर्ड पर काम करता रहा। अगली सुबह सिर्फ घंटे भर के लिए समय निकाला, जिसमें तैयार होकर नाश्ता किया। रविवार की सुबह मेरा काम पूरा होने के करीब ही था। तभी अचानक मुझे लगा कि मेरे कमरे में कोई है। प्रो. श्रीनिवासन दूर से खड़े मुझे देख रहे थे। वे सीधे जिमखाना से आ रहे थे और टेनिस के कपड़ों में थे तथा मेरा काम देखने के लिए ही यहाँ रुके थे। मेरा काम देखने के बाद उन्होंने मुझे अपने गले लगा लिया और तारीफ करते हुए मेरी पीठ थपथपाई। उन्होंने कहा, 'मुझे पता था कि तुम्हारे भीतर तनाव पैदा हो रहा है और काम पूरा करने के लिए मैं जो समय तुम्हें दे रहा हूँ, उसमें वह संभव नहीं होगा। मुझे जरा भी उम्मीद नहीं थी कि इतने भयंकर तनाव में भी तुम अपना काम पूरा कर लोगे।'

परियोजना की शेष अवधि के दौरान मैंने एक निबंध प्रतियोगिता में हिस्सा लिया। उसका आयोजन एम.आई.टी. तमिल संगम (साहित्यिक संस्था) ने किया था। तमिल मेरी मातृभाषा है और उसकी उत्पत्ति पर मुझे गर्व है। इसकी उत्पत्ति का काल रामायण काल से भी पहले अगस्त्य मुनि के समय का है और इसका साहित्य ईसा पूर्व पाँचवीं शताब्दी का है। ऐसा कहा जाता है कि इस भाषा को व्याकरणाचार्यों

ने एक विशिष्ट रूप दे दिया है और अपने स्पष्ट तर्कों के लिए इसे अंतरराष्ट्रीय स्तर पर सम्मान अर्जित है। मुझे यह सुनिश्चित करते हुए बहुत ही उत्साह हो रहा था कि विज्ञान भी इस अद्‌भुत भाषा के दायरे से बाहर नहीं है। मैंने 'आइए, अपना खुद का विमान बनाएँ' (लेट अस मेक अवर ओन एयरक्राफ्ट) शीर्षक से तमिल में एक लेख लिखा। लेख सचमुच बहुत ही रुचिकर था और मैं प्रतियोगिता में जीत गया और पहला इनाम पाया। मुझे यह पुरस्कार लोकप्रिय तमिल साप्ताहिक 'आनंद विकटन' के संपादक देवन ने दिया था।

एम.आई.टी. से जो मेरी सबसे गहरी याद जुड़ी हुई है, वह प्रो. स्पांडर से संबंधित है। विदाई समारोह के दौरान हमें एक सामूहिक फोटो खिंचवाना था। स्नातक पास करनेवाले सभी छात्र तीन पंक्तियों में खड़े थे और सभी प्रोफेसर आगेवाली पंक्ति में बैठे हुए थे। प्रो. स्पांडर खड़े हुए और मुझे देखा। मैं तीसरी पंक्ति में खड़ा हुआ था। 'यहाँ आओ और आगे की पंक्ति में मेरे साथ बैठो।' प्रो. स्पांडर ने कहा। उन्होंने दोबारा मुझे आगे आने को कहा, 'तुम मेरे सबसे प्रिय छात्र हो। तुम्हारी कड़ी मेहनत ही भविष्य में तुम्हारे शिक्षकों का नाम रोशन करेगी।' उनकी इस प्रशंसा से मेरे समक्ष एक कठिनाई खड़ी हो गई; लेकिन अपने काम के सम्मान की वजह से मैं प्रो. स्पांडर के पास जाकर बैठ गया। मुझे विदाई देते वक्त प्रो. स्पांडर ने कहा, 'ईश्वर तुम्हारी उम्मीदें पूरी करे, तुम्हें सहारा दे, तुम्हें रास्ता दिखाए और भविष्य की यात्रा में तुम्हारा पथ-प्रदर्शक बने।'

एम.आई.टी. से मैं एक प्रशिक्षु के रूप में हिंदुस्तान एयरोनॉटिक्स लिमिटेड (एच.ए.एल.), बंगलौर में चला गया था। वहाँ मैंने एक टीम के सदस्य के रूप में इंजनों की मरम्मत का काम किया। हवाई जहाज के इंजन पर अपने हाथों से किया गया काम ही काफी कुछ सिखानेवाला होता है। कक्षा में पढ़े गए सिद्धांत को जब व्यावहारिक अनुभव में उतारा जाता है तो यह एक प्रकार की अनूठी उत्तेजना पैदा करता है। एच.ए.एल. में मैंने दोनों तरह के इंजनों—पिस्टन इंजन एवं टरबाइन इंजन—की मरम्मत का काम किया। यहीं मेरे मस्तिष्क में 'दहन के बाद' (आफ्टर बर्निंग) के सिद्धांत पर काम करते हुए गैस गतिकी एवं विसरण प्रक्रिया से संबंधित अस्पष्ट अवधारणाओं ने अपने भेद खोले। मेरा यहाँ रेडियल इंजन तथा ड्रम ऑपरेशनों का प्रशिक्षण भी हुआ।

मैंने यहाँ सीखा कि एक क्रैंकशॉफ्ट की जाँच किस तरह से की जाती है। इसी तरह घुमाव के लिए छड़ एवं क्रैंकशॉफ्ट को जोड़ने का भी काम सीखा। मैंने सुपर इंजनों पर लगे पंखों के अंशांकन का भी काम किया। इसके अलावा मैंने.

दबाव प्रणाली एवं त्वरण सहगति नियंत्रण प्रणाली (एक्सेलरेशन-कम-स्पीड कंट्रोल सिस्टम) को समझा तथा टरबो इंजनों के वायु प्रवाह प्रणाली (एयर स्टार्टर सप्लाई सिस्टम) के बारे में भी जाना। पंखों से संबंधित प्रणालियाँ और प्रणोदक इंजनों के बारे में समझना तो बहुत ही रुचिकर था। एच.ए.एल. के तकनीशियन जिस कुशलता एवं बारीकी के साथ ब्लेड एंगल नियंत्रण, यानी बीटा कला का प्रदर्शन करते थे वह मुझे आज भी अच्छी तरह से याद है। न तो वे लोग बड़े विश्वविद्यालयों में पढ़े थे और न ही वे सिर्फ अपने इंजीनियर के सुझावों को आँख मूँदकर मान लेते थे। वे खुद अपने हाथों से कई वर्षों से यहाँ काम कर रहे थे और इसीसे उन्हें यहाँ काम करने की एक स्वतः अंतःप्रेरणा महसूस होती थी।

जब मैं एच.ए.एल. से एक वैमानिकी इंजीनियर बनकर निकला तो मेरे सामने नौकरी के दो बड़े अवसर थे और दोनों ही मेरे वर्षों पुराने उड़ान के सपने को पूरे करनेवाले थे। एक अवसर भारतीय वायुसेना का था और दूसरा रक्षा मंत्रालय के तकनीकी विकास एवं उत्पादन निदेशालय, डी.टी.डी. एंड पी. (एयर) का। मैंने दोनों नौकरियों के लिए आवेदन किया और दोनों ही जगह से मुझे साक्षात्कार के लिए बुलावा आया। वायुसेना में भरती होने के लिए मुझे देहरादून पहुँचना था और डी.टी.डी. एंड पी. (एयर) में साक्षात्कार के लिए दिल्ली जाना था। दक्षिण भारतीय तटीय इलाके के इस लड़के ने उत्तर जाने के लिए ट्रेन पकड़ी। गंतव्य दो हजार किलोमीटर से ज्यादा दूर था। अपनी मातृभूमि की विशालता से मेरा यह पहला सरोकार था।

□

: तीन :

रेल के डिब्बे की खिड़की से मैंने देश का देहाती रूप देखा, जो पहले नहीं देखा था। धान के खेतों में सफेद धोती और पगड़ी लगाए हुए खेतों में काम कर रहे लोग तथा चमकीले रंग बिखेरती महिलाओं को देखकर ऐसा लगता था जैसे यह कोई सुंदर पेंटिंग हो। मैं खिड़की से चिपककर बैठा हुआ था। ज्यादातर जगहों पर लोग किसी-न-किसी काम में लगे दिखाई पड़े, जिसमें एक तरह की लय और शांति थी—जानवर चरा रहे पुरुष, कुओं से पानी खींचकर ले जाती महिलाएँ। कभी-कभार कोई बच्चा नजर आ जाता और ट्रेन की ओर हाथ हिलाता पीछे छूट जाता।

यह बहुत ही विस्मयकारी है कि जब कोई उत्तर की ओर बढ़ता है तो भू-भाग में कैसा परिवर्तन होता जाता है। गंगा नदी के इस समृद्ध एवं उपजाऊ मैदानी इलाके तथा इसकी कई सहायक नदियों ने अनेक हमले, हलचल और परिवर्तन देखे हैं। ईसा से करीब पंद्रह सौ साल पूर्व, उत्तर-पश्चिम से आगे तक गुजरनेवाले पहाड़ी क्षेत्रों में गोरी चमड़ीवाली आर्य जाति के लोग फैल चुके थे। दसवीं शताब्दी में मुसलमान आए, जो बाद में स्थानीय लोगों के साथ घुल-मिल गए और इस देश का अभिन्न हिस्सा बन गए। एक साम्राज्य से दूसरे साम्राज्य का रास्ता बनता गया। धार्मिक जीतों का सिलसिला जारी रहा। इस वक्त तक भी कर्क रेखा के दक्षिण में विंध्य एवं सतपुड़ा की पहाड़ियों की श्रृंखला के कारण भारत का बड़ा हिस्सा इनसे पूरी तरह सुरक्षित बचा हुआ था। इसके साथ ही नर्मदा, ताप्ती, गोदावरी और कृष्णा नदियों का जाल इस तरह बुना हुआ था कि इससे भारतीय भू-भाग के एक बड़े हिस्से की पूरी सुरक्षा रहती थी। वैज्ञानिक प्रगति के कारण ही इन सब भौगोलिक बाधाओं को पार करते हुए रेल ने मुझे दिल्ली पहुँचाया।

मैं एक हफ्ते महान् सूफी संत हजरत निजामुद्दीन के इस शहर दिल्ली में रुका और डी.टी.डी. एंड पी. (एयर) में इंटरव्यू दिया। मेरा इंटरव्यू काफी अच्छा

हुआ था। पूछे गए सारे प्रश्न आम थे। ऐसा कोई भी सवाल नहीं था जो मेरी योग्यता को चुनौती देनेवाला हो। इसके बाद वायुसेना चयन बोर्ड में दूसरा इंटरव्यू देने के लिए मैं देहरादून रवाना हो गया। इस चयन बोर्ड में बुद्धि के बजाय व्यक्तित्व पर ज्यादा जोर था। शायद वे स्पष्ट तौर पर शारीरिक योग्यता को ही देख रहे थे। भीतर की उत्तेजना के बाद भी मैं शांत दिख रहा था। दृढ़ संकल्प था, लेकिन साथ ही चिंतित भी। मन में विश्वास होते हुए भी तनाव था। वायुसेना के लिए पच्चीस में से जिन आठ उम्मीदवारों का कमीशन अधिकारी के लिए चयन हुआ, उसमें मैं नौवें नंबर पर ही आकर अटक गया। इसे लेकर मेरे भीतर एक गहरी हूक-सी उठी। किंकर्तव्यविमूढ़-सा हो गया मैं। मुझे यह समझने में थोड़ा वक्त लगा कि वायुसेना में नौकरी पाने का अवसर, जो मेरे हाथों के करीब ही था, आकर निकल गया। मैं चयन बोर्ड से बाहर आ गया और एक चट्टान के किनारे पर खड़ा हो गया। नीचे एक झील थी, जिसमें ऊँचाई से एक झरना गिर रहा था। कभी झील झिलमिलाती, कभी झरना स्थिर दिखता। मुझे पता था कि आनेवाले दिन काफी मुश्किल भरे होंगे। ऐसे कई सवाल थे, जो जवाब चाहते थे।

ऊहापोह में उलझा मैं ऋषिकेश आ गया। मैंने गंगा में स्नान किया और इसकी शुद्धता का आनंद लिया। इसके बाद मैं छोटी सी पहाड़ी पर बने शिवानंद आश्रम में गया। जब मैंने आश्रम में प्रवेश किया तो मुझे तीव्र कंपन महसूस हुए। मैंने देखा कि चारों ओर बड़ी संख्या में साधु समाधि लगाए बैठे हैं। मैंने पढ़ा था कि साधु आत्मिक व्यक्ति होते हैं—वे व्यक्ति, जो अपने अंतर्ज्ञान से ही सबकुछ जान लेते हैं। अपने उदासी के क्षणों में ही मैं उन सवालों का जवाब खोजने चला, जो मुझे परेशान किए हुए थे।

मैं स्वामी शिवानंद से मिला—बिलकुल भगवान् बुद्ध की तरह दिखनेवाले। वह श्वेत धवल धोती और पैरों में खड़ाऊँ पहने हुए थे। मैं उनकी अत्यंत सम्मोहक, एकदम बच्चे जैसी मुसकान और कृपालु भाव देखकर दंग रह गया। मैंने स्वामीजी को अपना परिचय दिया। मेरे मुसलिम नाम की उनमें जरा भी प्रतिक्रिया नहीं हुई। मैं और आगे कुछ बोल पाता, इससे पहले ही उन्होंने मेरी उदासी का कारण पूछ लिया। उन्होंने कहा, 'यह मत पूछना कि मैंने यह कैसे जाना कि तुम उदास हो।' और फिर मैंने उनसे यह नहीं पूछा।

मैंने उन्हें भारतीय वायुसेना में अपने नहीं चुने जा पाने की असफलताओं के बारे में बताया। उन्होंने मुसकराते हुए मेरी सारी चिंताएँ दूर कर दीं और फिर धीमे तथा गहरे स्वर में कहा, 'इच्छा, जो तुम्हारे हृदय और अंतरात्मा से उत्पन्न होती

हो, जो शुद्ध और मन से की गई हो, एक विस्मित कर देनेवाली विद्युत्-चुंबकीय ऊर्जा लिये होती है। यही ऊर्जा हर रात को, जब मस्तिष्क सुषुप्त अवस्था में होता है, आकाश में चली जाती है। हर सुबह यह ऊर्जा ब्रह्मांडीय चेतना लिये वापस शरीर में प्रवेश करती है। जिसकी परिकल्पना की गई है, वह निश्चित रूप से प्रकट होता नजर आएगा। नौजवान, तुम इस तथ्य पर ठीक उसी तरह अनंत काल तक भरोसा कर सकते हो जैसे तुम हमेशा सूर्योदय के अकाट्य सत्य पर भरोसा करते हो।'

जब शिष्य चाहेगा, गुरु हाजिर होगा—कितना सच है यह! यहाँ गुरु अपने शिष्य को रास्ता दिखाता है, जो अपने रास्ते से थोड़ा भटक गया है—'अपनी नियति को स्वीकार करो और जाकर अपना जीवन अच्छा बनाओ। नियति को मंजूर नहीं था कि तुम वायुसेना के पायलट बनो। नियति तुम्हें जो बनाना चाहती है, उसके बारे में अभी कोई नहीं बता सकता; लेकिन नियति यह पहले ही तय कर चुकी है। अपनी इस असफलता को भूल जाओ, जैसेकि नियति को तुम्हें यहाँ लाना ही था। असमंजस से निकल अपने अस्तित्व के लिए सही उद्देश्य की तलाश करो। अपने को ईश्वर की इच्छा पर छोड़ दो।' स्वामीजी ने कहा।

मैं दिल्ली लौट आया और डी.टी.डी. एंड पी. (एयर) जाकर अपने इंटरव्यू के नतीजे के बारे में पता लगाया। जवाब में मुझे नियुक्ति पत्र दे दिया गया। अगले ही दिन मैंने दो सौ पचास रुपए के मूल वेतन पर वरिष्ठ वैज्ञानिक सहायक के पद पर काम सँभाल लिया। मैंने सोचा, अगर यही मेरी नियति है तो इसे होने दिया जाय। आखिरकार अब मुझे काफी मानसिक शांति थी। वायुसेना में चयन नहीं हो पाने का दुःख मैंने भुला दिया था। ये सब सन् 1958 की बातें हैं।

निदेशालय में मुझे तकनीकी केंद्र (उड्डयन) में लगाया गया। अगर मैं हवाई जहाज उड़ा नहीं रहा था तो कम-से-कम उन्हें उड़ान के लायक बनाने में तो मदद कर ही रहा था, ऐसा मैं सोचा करता। निदेशालय में मेरी नौकरी के पहले साल के दौरान मैंने ऑफीसर-इंचार्ज आर. वरदराजन की मदद से एक पराध्वनिक लक्ष्यभेदी विमान का डिजाइन करने में सफलता हासिल कर ली। निदेशक डी. नीलकंठन ने इसकी काफी तारीफ की। विमानों के रख-रखाव का अनुभव हासिल करने के लिए मुझे एयरक्रॉफ्ट एंड आर्मामेंट टेस्टिंग यूनिट (विमान एवं हथियार प्रशिक्षण इकाई ए. एंड ए.टी.यू.), कानपुर भेजा गया। उस समय वहाँ एम.के.-1 विमान के परीक्षण का काम चल रहा था। इसकी कार्यप्रणालियों के मूल्यांकन को पूरा करने के काम में मैंने भी हिस्सा लिया।

उन दिनों में भी कानपुर एक बड़ी आबादीवाला शहर था। किसी औद्योगिक शहर में रहने का मेरा यह पहला अनुभव था। ठंडा मौसम, भीड़, शोर-शराबा और धुआँ—यहाँ यह सब एकदम रामेश्वरम् के माहौल से ठीक विपरीत था। यहाँ मुझे विशेष दिक्कत आलू को लेकर भी थी; क्योंकि सुबह नाश्ते से लेकर रात के खाने तक—हर खाने में यह होता था। अपनी मिट्टी की गंध और परिवार का संरक्षण छोड़कर यहाँ की फैक्टरियों में रोजगार की तलाश में गाँवों से लोग आते थे। मुझे इन भटकते लोगों को देखकर बड़ा दुःख होता।

मेरे दिल्ली लौटने पर मुझे बताया गया कि डी.टी.डी. एंड पी. (एयर) ने 'डार्ट' लक्ष्य के डिज़ाइन का काम अपने हाथ में लिया है और मुझे इस डिजाइन टीम में शामिल किया गया है। तब मैंने इस डिजाइन का प्रारंभिक अध्ययन किया और बाद में इसका डिजाइन भी तैयार किया तथा ऊर्ध्वाधर उड़ान भरने और विमान उतारने के प्लेटफॉर्म को भी विकसित किया। मैं हॉट कॉकपिट के विकास एवं निर्माण के काम से भी जुड़ा था। तीन साल गुजर चुके थे। तब बंगलौर में वैमानिकी विकास प्रतिष्ठान (ए.डी.ई.) की स्थापना की गई और मुझे इस नए प्रतिष्ठान में भेज दिया गया।

बंगलौर शहर कानपुर के मुकाबले ठीक उलटा था। दरअसल मेरा मानना है कि हमारे देश ने लोगों को बड़ा अतिवादी बना दिया है। मैं मानता हूँ कि यह इसलिए है, क्योंकि कई शताब्दियों तक विदेशी आक्रमणों के चलते इस देश में उजड़ने-बसने का लगभग अंतहीन सिलसिला चलता रहा और इसने हमारी एक साथ रहने की क्षमता को नष्ट कर दिया। बजाय विद्रोही हो जाने के हमने अपने भीतर जहाँ सहृदयता एवं दयालु बनने की असाधारण क्षमता विकसित कर ली, वहीं हम, कहीं भीतर, क्रूर संवेदनहीन और निर्दयी भी हो गए। साधारण दृष्टि से तो हम सजीव नजर आते हैं, परंतु यही दृष्टि आलोचनात्मक हो तो हम विलक्षण हो जाते हैं। कानपुर में मैंने लोगों को पान चबाने में वाजिद अली शाह की नकल करते देखा और बंगलौर में अंग्रेज साहबों की तरह लोगों को कुत्ते घुमाते पाया। यहाँ भी मैं रामेश्वरम् जैसी शांति एवं निस्तब्धता के लिए तरस गया। भारतीयों में मन और मस्तिष्क के बीच जो संबंध है, उसको भी हमारे शहरों की खंड-खंड होती संवेदनशीलता ने खत्म-सा कर दिया है। मैं अपनी शामें बंगलौर के बगीचों एवं व्यावसायिक परिसरों में टहलकर बिताता।

पहले वर्ष में ए.डी.ई. में काम का दबाव बहुत ही कम था। दरअसल सबसे पहले खुद मुझे ही अपने लिए काम तैयार करना था, तभी धीरे-धीरे माहौल तैयार

हो पाता। शुरुआती अध्ययन के अनुभव के आधार पर एक टीम बनाई, जिसे ग्राउंड इक्विपमेंट मशीन (जैम) के रूप में स्वदेशी हॉवरक्रॉफ्ट (मँडरानेवाले वाहन) का डिजाइन तैयार करना और विकास करना था। यह टीम एक छोटे कार्यदल के रूप में थी। वैज्ञानिक सहायक के स्तर पर इसमें चार लोग शामिल थे। ए.डी.ई. के निदेशक डॉ. ओ.पी. मेदीरत्ता ने मुझसे इस टीम का नेतृत्व करने को कहा। उड़ान में इंजीनियरिंग मॉडल शुरू करने के लिए हमें तीन साल का वक्त दिया गया।

यह परियोजना हमारी सामूहिक क्षमताओं की तुलना में हर तरह से बड़ी थी। हममें से किसीको भी मशीन, और वो भी विमान, तैयार करने का अनुभव नहीं था; न ही कोई डिजाइन या कल-पुरजे उपलब्ध थे, जिनकी मदद से इसे शुरू कर पाते। यह हम सबको पता चल गया था कि हम ऐसी उड़ती मशीन का निर्माण सफलतापूर्वक कर सकते हैं। हॉवरक्राफ्ट्स के बारे में जितना कुछ पढ़ने को मिल सकता था, हमने जुटाने की कोशिश की। लेकिन बहुत ज्यादा उपलब्धि नहीं रही। इस क्षेत्र में कार्यरत लोगों से विचार-विमर्श किया; लेकिन कुछ भी हाथ नहीं लगा। एक दिन मैंने सीमित जानकारियों और उपलब्ध संसाधनों से ही काम शुरू करने का फैसला कर डाला।

पंखोंरहित, हलका और तीव्र मशीनवाला वाहन तैयार करने के इस उत्साहजनक उद्यम ने मेरे दिमाग की खिड़कियाँ खोल दीं। मुझे जल्दी ही हॉवरक्राफ्ट व एयरक्राफ्ट के बीच कम-से-कम एक लाक्षणिक गुण दिख गया। आखिरकार राइट बंधुओं को भी पहला हवाई जहाज तैयार करने में सात साल लग गए थे। मैंने पाया कि जैम परियोजना के विकास के लिए काफी अच्छे अवसर हैं। ड्राइंग बोर्ड पर कुछ महीने काम करने के बाद हम लोग सीधे हार्डवेयर विकसित करने में जुट गए।

एक खतरा हमेशा यह बना रहता था कि मेरे जैसे ग्रामीण, छोटे कस्बेवाली, मध्यम वर्गीय—जिसके माता-पिता की थोड़ी ही शिक्षा हुई हो—पृष्ठभूमिवाले को कहीं किनारे तो नहीं कर दिया जाएगा और अस्तित्व बचाने के लिए तब तक संघर्ष करना पड़ेगा जब तक उचित परिस्थितियाँ पैदा न हों। मैंने ठान लिया कि मुझे अपने लिए अवसर खुद तैयार करने होंगे।

हिस्सा-दर-हिस्सा, चरण-दर-चरण तथा सुनियोजित तरीके से काम शुरू होने लगा। इस परियोजना पर काम करते हुए मैंने यह जाना कि अगर एक बार आपके मस्तिष्क में कोई नया विचार आ गया तो यह अपने मूल स्वरूप में कभी वापस नहीं लौटता।

उन दिनों वी.के. कृष्णमेनन रक्षामंत्री हुआ करते थे। वे हमारी इस परियोजना की प्रगति के बारे में जानने के बड़े इच्छुक रहते। इस परियोजना को वह भारत के रक्षा उपकरणों के स्वदेशी विकास की शुरुआत के रूप में देखते थे। जब भी वे बंगलौर में होते, हमारी इस परियोजना की समीक्षा करने के लिए थोड़ा वक्त हमेशा निकालते थे। हमारी योग्यता में उनका विश्वास हमारे उत्साह को और बढ़ा देता था। मैं सभी बाहरी मुश्किलों को भूल अपनी कार्यशाला में उसी तरह जाया करता था जिस तरह मेरे पिताजी बाहर जूते उतार मसजिद में नमाज पढ़ने जाते थे। लेकिन जैम परियोजना के बारे में कृष्णमेनन जैसी राय हर किसीकी नहीं बनी। उपलब्ध उपकरणों एवं कल-पुरजों से हम जो प्रयोग कर रहे थे, उससे मेरे वरिष्ठ सहयोगी पूरी तरह खुश नहीं थे। कई तो हमें सनकी आविष्कारकों का एक समूह कहते थे, जो असंभव सपने को पूरा करने में लगा था। इस टीम का मुखिया होने की वजह से मुझे ही निशाना बनाया जाता था। कुछ लोग दूसरी तरह का सम्मान भी देते थे। परंतु वे लोग कहा करते थे कि एक ऐसा देहाती, जो हवा में उड़ने के बाद हवा को अपनी जमींदारी जैसा समझता है। ए.डी.ई. के कुछ वरिष्ठ वैज्ञानिक मेरे विरुद्ध जो टिप्पणियाँ करते थे, उनसे मुझे सन् 1896 में राइट बंधुओं पर लिखी जॉन ट्रॉब्रिज की कविता याद आ जाती—

'बाँस और सुतली से
मोम से, हथौड़े से
कुंदों से, पेंचों से
जोड़कर, जुगाड़कर
चमगादड़ से प्रेरित, दो भाई दीवाने
झोंक रहे कोयला, फूँक रहे धौंकनी
बना रहे देखो तो
लकड़ी की एक परी।'

जब यह परियोजना एक साल पुरानी हो चली थी, रक्षामंत्री कृष्णमेनन ए.डी.ई. के दौरे पर आए। मैं उन्हें अपनी कार्यशाला में ले गया। अंदर एक टेबल पर जैम मॉडल अलग-अलग हिस्सों में रखा हुआ था। यह मॉडल युद्धक्षेत्र में प्रयोग में लाए जानेवाले व्यावहारिक हॉवरक्राफ्ट के विकास के लिए एक साल के अथक प्रयास को दरसा रहा था।

कृष्णमेनन ने आश्वस्त होने के लिए कि अगले वर्ष यह परीक्षण उड़ान में शामिल कर लिया जाएगा, मुझसे एक के बाद एक कई सवाल पूछे। उन्होंने डॉ.

मेदीरत्ता से कहा, 'कलाम की इस जुगत से जैम की परीक्षण उड़ान संभव है।'

भगवान् शिव के वाहन के प्रतीक रूप में इस हॉवरक्राफ्ट को 'नंदी' नाम दिया गया। इस मॉडल को संपूर्ण आकार एवं रंग-रूप दिया जाना हमारी उम्मीदों से परे था। हमारे पास इसका केवल ढाँचा ही था। मैंने अपने साथियों से कहा, 'यह उड़नेवाली मशीन है, सनकियों के समूह द्वारा बनाई गई नहीं बल्कि इंजीनियरों की योग्यता से तैयार मॉडल। इसकी तरफ मत देखिए। यह देखने के लिए नहीं बना है बल्कि इसके साथ उड़िए।'

रक्षामंत्री कृष्णमेनन ने अपने साथ आए अधिकारियों द्वारा व्यक्त की गई सुरक्षा संबंधी चिंताओं को नजरअंदाज करते हुए 'नंदी' में उड़ान भरी। मंत्री के साथ आए एक ग्रुप कैप्टन ने, जिसे कई हजार घंटे की उड़ान का अनुभव था, मेरे जैसे अनुभवहीन एवं नागरिक पायलट से मंत्री महोदय को सुरक्षित रखने के लिए खुद विमान उड़ाने का प्रस्ताव रखा और मुझे हॉवरक्राफ्ट से बाहर आ जाने का संकेत दिया। जिस मॉडल को मैंने बनाया था उसे उड़ाने में मुझे कोई शंका नहीं थी और तब मैंने 'नहीं' का इशारा करते हुए सिर हिला दिया। इस तरह संकेतों में मेरे और उस ग्रुप कैप्टन के संवाद को देखते हुए कृष्णमेनन ने हँसकर उस ग्रुप कैप्टन के सुझाव को नकार दिया और मुझे उड़ान भरने का संकेत दे दिया। वे बहुत खुश थे—'तुमने दिखा दिया है कि हॉवरक्राफ्ट के विकास में जो बुनियादी समस्याएँ थीं, उन्हें दूर कर लिया गया है। इससे भी शक्तिशाली वाहन तैयार करो और मुझे दूसरी बार की सवारी के लिए बुलाओ।' कृष्णमेनन ने मुझसे कहा। ग्रुप कैप्टन गोले (जो कालांतर में एयर मार्शल तक बने) बाद में मेरे बहुत अच्छे दोस्त बन गए।

हमने इस परियोजना को समय के भीतर पूरा कर लिया था। हमारे पास अब पाँच सौ पचास किलोग्राम वजन और चालीस मिमि वायुदाब पर उड़ सकनेवाला हॉवरक्राफ्ट था। डॉ. मेदीरत्ता हमारी इस उपलब्धि से काफी प्रसन्न थे। लेकिन तभी कृष्णमेनन रक्षा मंत्रालय से हट गए और दूसरी बार आने का उनका वायदा पूरा नहीं हो पाया। बदली हुई व्यवस्था में स्वदेशी हॉवरक्राफ्ट को सेना में इस्तेमाल करने के सपने को साकार बनाने में कइयों को संगति नजर नहीं आई। वास्तव में आज भी हम हॉवरक्राफ्टों का आयात करते हैं। फिर यह परियोजना विवादों में फँस गई और अंत में इसे ताक पर रख दिया गया। मेरे लिए यह एक नया अनुभव था। अभी तक मैं सिर्फ आकाश को ही अपनी उड़ान की सीमा समझता था, लेकिन अब लगा था कि सीमाएँ तो और भी करीब हैं। कुछ मर्यादाएँ हैं, जो जीवन को चलाती हैं—'तुम सिर्फ इतना ही भार ही उठा सकते हो, जितना भी चाहो तुम

सिर्फ इतना ही सीख सकते हो, तुम सिर्फ एक हद तक कठोर परिश्रम कर सकते हो, तुम सिर्फ एक दूरी तक आगे तक जा सकते हो।'

मैं इस वास्तविकता का सामना करने का इच्छुक नहीं था। मेरा दिल और आत्मा तो 'नंदी' में बसी हुई थी। अब इसका कोई उपयोग नहीं होना था। यह मेरे अंतर्मन को पूर्णत: अस्वीकार्य था। मैं निराश हो चुका था और मेरे भ्रम टूट चुके थे। उलझनों और अनिश्चितता के इस दौर में मुझमें मेरे बचपन की यादें लौट आई थीं और उन यादों में मैंने अब नए अर्थ खोजने शुरू किए।

पक्षी शास्त्री कहा करते थे—'सत्य की तलाश करो और सत्य ही तुम्हें रास्ता दिखाएगा।' जैसाकि बाइबिल में कहा गया है—'माँगो, तुम्हें मिलेगा।' यह सब तुरंत ही नहीं हो जाता। लेकिन फिर भी यह हुआ। एक दिन डॉ. मेदीरत्ता ने मुझे बुलाया और हॉवरक्राफ्ट के बारे में पूछताछ की। जब उन्हें बताया गया कि यह उड़ान भरने के लिए पूरी तरह सक्षम है, तो उन्होंने मुझे अगले दिन एक विशिष्ट व्यक्ति के समक्ष इसका प्रदर्शन करने को कहा। अगले हफ्ते के दौरान हमारे वर्कशॉप में किसी भी वी.आई.पी. के आने का कार्यक्रम नहीं था। तो भी मैंने अपने साथियों को डॉ. मेदीरत्ता का यह निर्देश बता दिया और हममें एक नई आशा का संचार हुआ। अगले दिन डॉ. मेदीरत्ता उस विशिष्ट अतिथि को हमारा तैयार किया हुआ हॉवरक्राफ्ट दिखाने लाए। एक लंबा, खूबसूरत और दाढ़ीवाला व्यक्ति। उस शख्स ने मुझसे कई सवाल किए। मैं उनकी साफ सोच एवं विषयनिष्ठता से बहुत प्रभावित हुआ।

'क्या आप मुझे इसमें सवारी करा सकते हैं?' उन्होंने मुझसे पूछा।

उनके इस अनुरोध से मेरी खुशी का ठिकाना नहीं रहा। आखिरकार किसीने तो यहाँ आकर मेरे काम में दिलचस्पी दिखाई।

इस हॉवरक्राफ्ट में हमने करीब दस मिनट तक हवा पर सवारी की। हालाँकि 'नंदी' जमीन से कुछ ही सेंटीमीटर ऊपर था। दरअसल यह उड़ान नहीं थी बल्कि हम हवा में तैर रहे थे। नंदी आरूढ़ इस अतिथि ने मुझसे मेरे बारे में कुछ सवाल पूछे तथा सवारी कराने के लिए धन्यवाद दिया और रवाना हो गए। खुद पहले अपना परिचय नहीं देनेवाले ये विशिष्ट अतिथि कोई और नहीं बल्कि टाटा इंस्टीट्यूट ऑफ फंडामेंटल रिसर्च (टी.आई.एफ.आर.) के निदेशक प्रो. एम.जी.के. मेनन थे। एक हफ्ते बाद मुझे इंडियन कमेटी फॉर स्पेस रिसर्च की ओर से साक्षात्कार के लिए बुलावा आया। यह साक्षात्कार रॉकेट इंजीनियर पद के लिए था। उस समय भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान समिति के बारे में जितना मालूम था, वह यह कि भारत

में अंतरिक्ष अनुसंधान के लिए टी.आई.एफ.आर. में विलक्षण लोगों की एक संस्था बनाई गई है।

मैं साक्षात्कार के लिए बंबई (अब मुंबई) गया। साक्षात्कार में किस तरह के प्रश्न पूछे जाएँगे, इस बारे में मुझे जरा भी जानकारी नहीं थी। कुछ पढ़ने या किसी अनुभवी व्यक्ति से बात करने का जरा भी समय नहीं था। मेरे कानों में लक्ष्मण शास्त्री द्वारा सुनाए 'श्रीमद्भगवद्गीता' के अंश गूँज रहे थे—

'तुम सब
भ्रम की संतान
इच्छा और घृणा के छलावों से छलीं।
देखो
उन कुछ सत्पुरुषों को
पाप से परे
छलावों से छूटे
दृढ़ अपनी प्रतिज्ञा पर
अडिग मेरी आस्था में।'

मुझे याद आया कि विजयी होने के लिए सबसे अच्छा तरीका यह है कि विजयी होने की जरूरत नहीं है। जब आप भ्रमों से मुक्त एवं शांतचित्त होते हैं तभी किसी काम को पूरे बेहतर ढंग से कर पाते हैं। मैंने चीजों-घटनाओं को उसी तरह लेना शुरू कर दिया जैसे वे मेरे जीवन में आईं। न तो प्रो. एम.जी.के. मेनन बंगलौर दौरे पर हमारे यहाँ आते, न ही मुझे यहाँ से साक्षात्कार के लिए बुलावा आता। मैंने तय किया कि इसी तरह का नजरिया होना सबसे अच्छा है।

मेरा साक्षात्कार डॉ. विक्रम साराभाई ने लिया। उनके साथ प्रो. एम.जी.के. मेनन और परमाणु ऊर्जा आयोग के तत्कालीन उपसचिव श्री सर्राफ भी थे। जैसे ही मैंने कमरे में प्रवेश किया, मुझे उत्साहवर्द्धक और दोस्तानापूर्ण माहौल महसूस हुआ। डॉ. साराभाई की ज़िंदादिली देखकर मैं दंग रह गया। उनमें कहीं कोई ऐसा अहंकार, अक्खड़पन या अतिरेक का भाव नहीं था, जैसाकि प्राय: साक्षात्कार लेनेवाले नौजवान उम्मीदवार के सामने प्रदर्शित करते हैं। डॉ. साराभाई के प्रश्न मेरी मौजूदा योग्यता या कुशलता की परीक्षा लेनेवाले नहीं थे; बल्कि वे उन संभावनाओं की तलाश से संबंधित थे, जो मेरे भीतर थीं। वे मेरी ओर ऐसे देख रहे थे जैसे किसी व्यापक संदर्भ में मुझे परख रहे हों। मुझे पूरा साक्षात्कार उस सत्य के समान लगा, जिसमें मेरे सपने को एक ज्यादा बड़े व्यक्ति के बड़े सपने में समाहित कर

दिया है।

मुझे दो दिन में वापस आने को कहा गया। पर फिर अगले दिन शाम को ही मुझे मेरे चयन के बारे में बता दिया गया। मुझे भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान समिति में रॉकेट इंजीनियर के पद पर रख लिया गया। मेरे जैसे नौजवान के लिए अपना सपना पूरा करने का यह एक बड़ा मौका था।

भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान समिति में मेरा काम टी.आई.एफ.आर. कंप्यूटर केंद्र में कंप्यूटर प्रशिक्षण के रूप में शुरू हुआ। यहाँ का माहौल डी.टी.डी. एंड पी. (एयर) के माहौल से एकदम अलग था। यहाँ किसीको भी अपनी स्थिति को उचित ठहराने की आवश्यकता नहीं थी और न ही किसीके झगड़े सुलझाने की जरूरत थी।

सन् 1962 के मध्य में भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान समिति ने केरल में त्रिवेंद्रम (अब तिरुवनंतपुरम्) के पास थुंबा गाँव में रॉकेट प्रक्षेपण केंद्र स्थापित करने का फैसला किया। भौतिक अनुसंधान प्रयोगशाला, अहमदाबाद के डॉ. चिटनिस ने ही थुंबा को इस केंद्र के लिए सबसे उपयुक्त स्थान के रूप में चुना था; क्योंकि यह स्थान पृथ्वी के चुंबकीय अक्ष के सबसे करीब था। भारत में यह रॉकेट प्रौद्योगिकी पर आधुनिक शोध की शुरुआत थी। थुंबा में रॉकेट प्रक्षेपण केंद्र के लिए जगह रेलवे लाइन और समुद्र तट के बीच चुनी गई। करीब ढाई किलोमीटर और छह सौ एकड़ क्षेत्रफल का इलाका इसके लिए लिया गया था। इस इलाके में एक बड़ा चर्च भी पड़ता था, जिसकी जमीन इसी काम के लिए अधिगृहीत होनी थी। निजी भूमि का अधिग्रहण करना बहुत ही मुश्किल और काफी समय ले लेनेवाला काम होता है—खासतौर से केरल जैसे घनी आबादीवाले इलाके में तो और भी ज्यादा मुश्किल होती है। इसके अलावा धार्मिक महत्त्ववाले स्थान के अधिग्रहण का मामला और नाजुक हो जाता है। त्रिवेंद्रम के तत्कालीन कलक्टर के. माधवन नायर ने इस काम को बहुत ही युक्तिपूर्ण, शांतिपूर्ण तथा एक अभियान के रूप में किया था। इस काम में उन्हें त्रिवेंद्रम के बिशप फादर डॉ. डेरिरा का बहुत ही सहयोग और आशीर्वाद मिला था। केंद्रीय सार्वजनिक निर्माण विभाग (सी.पी.डब्ल्यू.डी.) के एक्जीक्यूटिव इंजीनियर आर.डी. जॉन ने पूरे इलाके को जल्दी ही हस्तांतरित कर दिया। सेंट मैरी मैगडेलेन चर्च में थुंबा अंतरिक्ष केंद्र का पहला दफ्तर खुला। इस चर्च का जो प्रार्थना कक्ष था उसीमें मेरी पहली प्रयोगशाला थी। बिशप के कमरे को मैंने डिजाइन एवं ड्राइंग के काम का दफ्तर बनाया। आज भी वहाँ चर्च का अपना प्रभामंडल कायम है और इस समय उसमें इंडियन स्पेस म्यूजियम बना दिया गया है।

उसके बाद शीघ्र ही मुझे रॉकेट प्रक्षेपण की तकनीकियों का प्रशिक्षण लेने के लिए अमेरिका में नेशनल एयरोनॉटिक्स एंड स्पेस एडमिनिस्ट्रेशन यानी 'नासा' में भेज दिया गया। यह प्रशिक्षण छह महीने का था। विदेश जाने से पहले मैंने रामेश्वरम् जाने के लिए थोड़ा सा समय लिया। मुझे विदेश जाने का मौका मिलने की खबर सुनकर पिताजी बहुत खुश हुए। वे मुझे विशेष नमाज के लिए मसजिद ले गए। मुझे ईश्वर की उस शक्ति के संचरण का एहसास हुआ, जो पिताजी के माध्यम से मेरे भीतर संचरित हो रही थी और वापस ईश्वर तक पहुँच रही थी।

प्रार्थना का एक जो मुख्य काम है, जैसाकि मैं मानता हूँ, वह है मनुष्य के भीतर नए-नए विचार उत्पन्न करना। विचार सचेतावस्था में मौजूद रहते हैं और जब ये विचार उत्सर्जित होते हैं, निकलते हैं तो वास्तविकता जन्म लेती है तथा निष्कर्ष सफल घटनाओं के रूप में सामने आते हैं। ईश्वर, हमारे रचयिता, ने हमारे मस्तिष्क के भीतर अपार ऊर्जा एवं योग्यता दी है। प्रार्थना हमें इन शक्तियों को प्रयोग में लाने में मदद करती है।

अहमद जलालुद्दीन और शम्सुद्दीन मुझे बंबई हवाई अड्डे पर विदा करने आए थे। बंबई जैसे शहर का उनके लिए यह ठीक उसी तरह का पहला अनुभव था जैसे न्यूयार्क जैसा महानगर मेरे लिए पहला अनुभव था। जलालुद्दीन और शम्सुद्दीन आत्मनिर्भर, सकारात्मक एवं आशावादी व्यक्ति थे, जिन्होंने परिस्थितियों को भी बदल डालकर अपने काम में सफलता हासिल की थी। यही दोनों लोग थे, जिनके साथ रहकर मैं अपने मस्तिष्क को सृजनात्मक बना पाया था। मैं अपनी भावनाओं को नहीं रोक पाया और मेरी आँखें डबडबा उठीं। तब जलालुद्दीन ने कहा, 'आजाद, हमने तुम्हें हमेशा प्यार किया है और यही स्नेह तुम्हारे भीतर भी है। हमें तुम पर हमेशा गर्व रहेगा।' मेरी क्षमताओं को लेकर उनके भीतर जो श्रद्धा थी, उसे देखकर मेरी आँखों से अश्रुधारा बह निकली।

□

II

सृजन

(1963—1980)

: चार :

'नासा' में मैंने अपना काम लैंगले रिसर्च सेंटर (एल.आर.सी.) से शुरू किया। 'नासा' का यह संस्थान वर्जीनिया राज्य के हैंपटन शहर के पास है। एल.आर.सी. अत्याधुनिक एयरो स्पेस टेक्नोलॉजी के लिए शोध एवं विकास का प्राथमिक केंद्र है। एल.आर.सी. की यादों में मुझे एक बात आज भी याद है। यहाँ एक अद्भुत मूर्ति रखी हुई है। इस मूर्ति में एक सारथि दो घोड़ों को हाँकते हुए दिखाया गया है। इन दो घोड़ों में एक घोड़ा वैज्ञानिक शोध को प्रदर्शित कर रहा है और दूसरा तकनीकी विकास को। कुल मिलाकर यह मूर्ति शोध एवं विकास के बीच अंतःसंबंध को प्रदर्शित कर रही है।

एल.आर.सी. से मैं मेरीलैंड में ग्रीनबेल्ट स्थित गॉडर्ड स्पेस फ्लाइट सेंटर (जी.एस.एफ.सी.) चला गया। यह केंद्र 'नासा' के ज्यादातर उपग्रहों का विकास करता है और उनके प्रबंधन का काम देखता है। ये ज्यादातर उपग्रह विज्ञान एवं अनुप्रयोगों से संबंधित होते हैं। यह केंद्र नासा के सभी अंतरिक्ष मिशनों के नेटवर्क का संचालन करता है। अपने अमेरिकी दौरे के अंत में मैं वर्जीनिया के पूर्वी तटीय द्वीप वैलप स्थित वैलप फ्लाइट फैसेलिटी गया। यह स्थान नासा के रॉकेट कार्यक्रमों का मुख्य आधार था। यहाँ मैंने स्वागतकक्ष में विशेष रूप से लगाई गई एक पेंटिंग देखी। उस पेंटिंग में एक युद्ध के दृश्य को चित्रित किया गया था और इस युद्ध दृश्य की पृष्ठभूमि में कुछ रॉकेट उड़ते हुए दिखाए गए थे। एक फ्लाइट फैसेलिटी में इस तरह की पेंटिंग बहुत ही मामूली वस्तु की तरह होनी चाहिए; लेकिन इसपर मेरी निगाहें ठहर गई थीं, क्योंकि इसमें रॉकेट छोड़े जानेवाली जगह पर खड़े जो सैनिक दिखाए गए थे वे श्वेत नहीं बल्कि अश्वेत थे। ठीक उसी वर्ण के जैसे दक्षिण एशिया में होते हैं। अपने प्रवास के अंतिम दिन मैं अपनी उत्सुकता न दबा पाया और मैंने निकट से पेंटिंग को देखने की अनुमति चाही। मेरे आश्चर्य का ठिकाना न रहा, जब मैंने पाया कि पेंटिंग में टीपू सुल्तान की सेना को रॉकेटों से

अंग्रेजों के साथ युद्ध करते दिखाया गया है। पृथ्वी के दूसरी ओर एक भारतीय उपलब्धि को गौरवान्वित पाकर मेरा मन भी आनंद से भर गया। अमेरिकी लोगों के बारे में मेरी जो धारणा है, उसका सार बेंजामिन फ्रैंकलिन के एक उद्धरण से व्यक्त किया जा सकता है—'वे चीजें जो नुकसान या चोट पहुँचाती हैं, मेरा मानना है कि दुनिया के इस हिस्से के लोग उनसे भिड़ जाते हैं और अपने सामने आनेवाली इन समस्याओं का डटकर मुकाबला करते हैं। वे इन समस्याओं से पीड़ित रहने के बजाय उनसे उबरने की कोशिश करते हैं।'

एक बार मेरी माँ ने पवित्र 'कुरान' से एक घटना मुझे सुनाई थी—इनसान के सृजन के बाद अल्लाह ने फरिश्तों को आदम के समक्ष हाजिर कर साष्टांग करने को कहा। शैतान के अलावा सभी आदम के सामने आए और श्रद्धानत हुए। शैतान ने ऐसा करने से मना कर दिया। अल्लाह ने शैतान से पूछा, 'तुमने अपने आपको क्यों नहीं पेश किया?' तब शैतान ने कहा, 'आपने मुझे आग से बनाया और उसे मिट्टी से। मुझ अग्निपुत्र का इस माटी के पुतले से क्या मुकाबला!' तब अल्लाह ने कहा, 'यहाँ से चले जाओ। तुम्हारे इस अपमानयुक्त घमंड के लिए यहाँ कोई जगह नहीं है।' शैतान ने बात मान ली, लेकिन वह आदम के समक्ष झुका नहीं। जाते समय उसने आदम को शाप दिया कि उसका भी यही हश्र हो। जल्दी ही आदम ने अल्लाह का हुक्म तोड़ बोध-फल खाया और जन्नत से निष्कासित हुआ। अल्लाह ने आदम से कहा था—'जाओ, अब से तुम व तुम्हारी संतानें श्रम पर पलेंगी और अविश्वास में जिएँगी।'

भारतीय संस्थानों में जो चीज सबसे ज्यादा मुश्किलें पैदा करती है, वह चारों ओर व्यापक रूप से लोगों में व्याप्त अवज्ञा रूपी अहंकार है। इसके रहते हम अपने से छोटों, अपने अधीनस्थों की बात नहीं सुनते। अगर आप किसीको अपमानित करते हैं तो आप उससे किसी नतीजे की आशा नहीं कर सकते। अगर आप उसे तिरस्कृत करेंगे या उसकी उपेक्षा करेंगे तो आप उससे किसी सृजनात्मकता की उम्मीद नहीं कर सकते। दुर्भाग्यवश आज हमारे देश में सिर्फ 'हीरो' और 'जीरो' हैं जिनके बीच एक बड़ी विकट विभाजन रेखा है। एक तरफ कुछ सौ 'हीरो' हैं और दूसरी ओर पंचानबे करोड़ लोग नीचे की तरफ धकेले हुए पड़े हैं। इस स्थिति को बदलना जरूरी है।

समस्याओं का सामना करने और उन्हें हल करने की प्रक्रिया प्रायः काफी परिश्रमवाली एवं कष्टसाध्य होती है। हममें अंतहीन दीर्घसूत्रता है। दरअसल समस्याओं को नश्तर की तरह प्रयोग कर ही असफलता के नासूर चीरे जा सकते हैं

और दर्द की पीड़ा से उबरा जा सकता है। वस्तुत: समस्याएँ अंतर्निहित साहस एवं बुद्धिमत्ता को प्रकट करती हैं।

जैसे ही मैं नासा से लौटा, 21 नवंबर, 1963 को भारत का 'नाइक–अपाची' नाम का पहला रॉकेट छोड़ा गया। यह गुंजायमान रॉकेट (साउंडिंग रॉकेट) नासा में ही बना था। यह रॉकेट उसी चर्च की इमारत में जोड़ा गया था जिसका मैं पहले जिक्र कर चुका हूँ। रॉकेट को ले जाने के लिए उपकरण के नाम पर सिर्फ एक ट्रक और हाथ से चलानेवाली हाइड्रोलिक क्रेन थी। जोड़कर तैयार किए गए इस पूर्ण रॉकेट को चर्च से प्रक्षेपण स्थल तक ट्रक से ले जाया गया था। जब रॉकेट को क्रेन से उठाया गया और लॉञ्चर (प्रक्षेपक) पर रखा जाने लगा, तभी इसमें झुकाव आना शुरू हो गया। क्रेन की हाइड्रोलिक प्रणाली में रिसाव आने से यह गड़बड़ी पैदा हो रही थी। रॉकेट छोड़े जाने का समय शाम छह बजे का था, जो तेजी से नजदीक आता जा रहा था। क्रेन में अब किसी भी हालत में मरम्मत हो नहीं सकती थी। तब रॉकेट को हम लोगों ने ही हाथों और कंधों पर उठा लिया और लॉञ्चर पर स्थापित कर दिया। इस रॉकेट प्रक्षेपण और इसकी सुरक्षा का प्रभारी मैं ही था। इस रॉकेट को छोड़े जाने में मेरे दो साथियों—डी. ईश्वरदास और आर. अर्वामुदन ने बहुत ही महत्त्वपूर्ण एवं सक्रिय भूमिका निभाई थी। रॉकेट को जोड़ने का काम ईश्वरदास ने किया था और प्रक्षेपण की व्यवस्था भी उन्होंने ही की थी। जबकि अर्वामुदन, जिन्हें हम प्यार से 'डैन' कहा करते थे, के जिम्मे राडार, टेलीमीटरी (दूरमापीय) और जमीन पर सहारा देने की जिम्मेवारी थी। रॉकेट का प्रक्षेपण बहुत ही आसानी से तथा बिना किसी दिक्कत के हो गया। हमें उड़ान संबंधी आँकड़े बहुत ही बेहतर मिले और हम काम पूरा करके गर्व से ऊँचा सिर लिये लौटे।

अगले दिन शाम को जब हम खाने की टेबल पर बैठे हुए थे, तभी हमें अमेरिकी राष्ट्रपति जॉन एफ. कैनेडी की डलास–टेक्सास में हत्या हो जाने की खबर मिली। अमेरिका के इतिहास में कैनेडी का कार्यकाल काफी महत्त्वपूर्ण रहा है। सन् 1962 में मिसाइल संकट के दौरान कैनेडी ने जो कदम उठाए थे, उससे संबंधित खबरें मैं काफी चाव से पढ़ा करता था। सोवियत संघ ने क्यूबा में मिसाइलें तैनात कर ली थीं, जहाँ से वह अमेरिकी शहरों पर आसानी से मिसाइलों द्वारा हमले कर सकता था। इसपर कैनेडी ने किसी भी तरह की मिसाइल तैनात करने को लेकर प्रतिबंध लगा दिया था। इसके अलावा अमेरिका ने सोवियत संघ को यह भी धमकी दे दी थी कि अगर उसने (सोवियत संघ ने) पश्चिम के किसी भी देश पर हमला किया तो उसके खिलाफ जवाबी कार्यवाही की जाएगी। सोवियत नेता

ख्रुश्चेव ने क्यूबा से मिसाइलें वापस रूस बुला लेने और वहाँ बनाए गए मिसाइल बेस को भी खत्म कर देने के आदेश दिए। इस तरह चौदह दिन बाद तनाव भरा यह ऐतिहासिक नाटक खत्म हो गया।

अगले दिन प्रो. साराभाई ने हमें भविष्य की योजनाओं पर विस्तार से बातचीत करने के लिए बुलाया। विज्ञान और टेक्नोलॉजी के क्षेत्र में वे भारत में एक नए युग का सृजन कर रहे थे। तीस से चालीस साल के बीच की नई पीढ़ी, वैज्ञानिकों और इंजीनियरों के भीतर एक अप्रत्याशित ऊर्जा का संचार किया जा रहा था। भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान समिति में हमारी सबसे बड़ी योग्यताएँ हमारी डिग्रियाँ और प्रशिक्षण नहीं था, बल्कि हमारी क्षमताओं में प्रो. साराभाई का विश्वास था। नाइक-अपाची को सफलतापूर्वक छोड़े जाने के बाद उन्होंने इंडियन सैटेलाइट लॉञ्च व्हीकल (भारतीय उपग्रह प्रक्षेपण यान) तैयार करने का अपना सपना हमारे साथ पूरा करने का मन बना लिया था।

प्रो. साराभाई का आशावाद बहुत ही प्रबल था। उनके थुंबा आने की खबर से लोगों में बिजली-सी दौड़ जाती थी और सभी प्रयोगशालाओं, कार्यशालाओं एवं डिजाइन ऑफिसों में अनवरत सक्रियता नजर आने लगती थी। प्रो. साराभाई को कुछ नया कर दिखाने के उत्साह एवं जोश में लोग रात-दिन काम में लगे रहते थे। हर कोई ऐसा कुछ नया कर दिखाना चाहता जैसाकि इससे पहले देश में कभी नहीं हुआ हो। नया डिजाइन हो, निर्माण के नए तरीके हों अथवा प्रशासनिक कामकाज के तौर-तरीके—सभी में सक्रियता आ जाती थी। प्रो. साराभाई एक व्यक्ति या एक समूह को प्रायः एक साथ कई काम सौंप देते थे। हालाँकि उनमें से कुछ काम तो शुरू में बिलकुल असंबद्ध लगते थे, लेकिन बाद में पता चलता था कि ये आपस में एक-दूसरे से काफी गहराई से जुड़े हैं। जब प्रो. साराभाई हमसे उपग्रह प्रक्षेपण यान (एस.एल.वी.) के बारे में बात कर रहे थे, तभी उन्होंने मुझसे सैनिक विमान (मिलिटरी एयरक्राफ्ट) के लिए रॉकेट की मदद से उड़ान भरने की प्रणाली (रॉकेट अस्स्टिेड टेक ऑफ सिस्टम यानी—राटो) का अध्ययन करने को कहा। मस्तिष्क में इसकी कल्पना कर लेने के सिवाय इन दोनों में कोई सीधा संबंध नहीं था। मुझे आभास था कि जल्दी ही या बाद में एक चुनौती भरे काम का अवसर मेरी प्रयोगशाला में आएगा।

प्रो. साराभाई हमेशा अद्भुत एवं विलक्षण तरीकों का परीक्षण करने के इच्छुक रहते थे और उन्हें नौजवान युवकों को सिखाते थे। उनकी बुद्धिमत्ता एवं निर्णय लेने की क्षमता इतनी प्रबल थी कि वे न सिर्फ यह महसूस कर लेते थे कि

क्या अच्छा हुआ है बल्कि यह भी कि इस काम को कब रोका जाना है। मेरी राय में वह एक आदर्श प्रयोगकर्ता एवं प्रवर्तक थे। हमारे समक्ष जब कोई काम करने के कई विकल्प होते, जिनके परिणामों की भविष्यवाणी करना मुश्किल होता या विभिन्न परिप्रेक्ष्यों में सामंजस्य स्थापित करना होता तो प्रो. साराभाई अपने से उस विषय को चुटकियों में हल कर देते थे।

रॉकेट प्रक्षेपण स्थल को बाद में थुंबा इक्वेटोरियल रॉकेट लॉन्च स्टेशन (टी.ई.आर.एल.एस.) के रूप में विकसित कर दिया गया। टी.ई.आर.एल.एस. फ्रांस, अमेरिका और सोवियत रूस के सक्रिय सहयोग से स्थापित किया गया था। भारतीय अंतरिक्ष कार्यक्रम के अगुआ प्रो. विक्रम साराभाई इस चुनौती में आनेवाली कठिनाइयों को बखूबी जानते थे। भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान समिति के गठन से ही वे समन्वित राष्ट्रीय अंतरिक्ष कार्यक्रम शुरू करने की जरूरत को समझते थे। वे शुरू से ही रॉकेट निर्माण एवं प्रक्षेपण सुविधाएँ विकसित करने और स्वदेशी तकनीक के पक्षधर थे। इसीको ध्यान में रखकर अंतरिक्ष विज्ञान एवं तकनीकी केंद्र तथा भौतिक अनुसंधान प्रयोगशाला, अहमदाबाद में रॉकेट ईंधनों, प्रणोदन प्रणालियों, वैमानिकी, रॉकेट मोटर इंस्ट्रूमेंटेशन, नियंत्रण एवं निर्देशन प्रणालियाँ, टेलीमीटरी, ट्रैकिंग प्रणालियाँ और अंतरिक्ष में प्रयोगों के लिए वैज्ञानिक उपकरणों के वैज्ञानिक एवं तकनीकी विकास के उद्देश्य से कई बड़े कार्यक्रम शुरू किए गए। इसी संस्थान ने अंतरिक्ष अनुसंधान के क्षेत्र में एक-से-एक दिग्गज वैज्ञानिक दिए।

भारतीय अंतरिक्ष कार्यक्रम की वास्तविक शुरुआत रोहिणी साउंडिंग रॉकेट (आर.एस.आर.) कार्यक्रम से होती है। एक उपग्रह प्रक्षेपण यान (एस.एल.वी.) और एक मिसाइल तथा साउंडिंग रॉकेट के बीच आखिर क्या फर्क होता है? दरअसल रॉकेट तीन तरह के होते हैं। साउंडिंग रॉकेट साधारणतया वायुमंडल के ऊपरी क्षेत्रों सहित पृथ्वी के आसपास के वातावरण का पता लगाने के काम आते हैं। ये विभिन्न ऊँचाइयों पर अलग-अलग किस्मों के वैज्ञानिक उपकरणों से युक्त पेलोड्स (मूल भार) ले जा सकते हैं। लेकिन पेलोड को कक्षा में स्थापित करने के लिए आवश्यक अंतिम वेग ये रॉकेट प्रदान नहीं कर सकते। दूसरी ओर एक प्रक्षेपण यान किसी भी पेलोड या उपग्रह को कक्षा में स्थापित करने के लिए तैयार किया जाता है। प्रक्षेपण यान का अंतिम चरण उपग्रह को कक्षा में स्थापित करने के लिए आवश्यक वेग प्रदान करता है। यह एक बहुत ही जटिल प्रक्रिया होती है, जिसमें निर्देशन एवं नियंत्रण प्रणालियों की जरूरत होती है। जबकि एक मिसाइल, जो इसी श्रेणी की होती है, और भी ज्यादा जटिल प्रणालियों से युक्त होती है। इसमें

तीव्र अंतिम वेग तथा निर्देशन एवं नियंत्रण के अतिरिक्त लक्ष्य पर मार करने की क्षमता होनी चाहिए। जब लक्ष्य तेज गतिमान हो तब मिसाइल को भी लक्ष्य पर हमले के लिए उसी अनुरूप छोड़े जाने की जरूरत होती है।

आर.एस.आर. कार्यक्रम की वजह से ही भारत में साउंडिंग रॉकेटों के निर्माण एवं विकास का काम संभव हो सका और भारत में इनसे संबंधित वैज्ञानिक अन्वेषणों के लिए नियंत्रण प्रणालियाँ विकसित हो सकीं। इस कार्यक्रम के तहत साउंडिंग रॉकेटों की एक पूरी श्रेणी विकसित की गई और विभिन्न वैज्ञानिक एवं तकनीकी अध्ययनों के लिए आज तक कई सौ रॉकेट छोड़े जा चुके हैं।

मुझे आज भी याद है कि पहला जो 'रोहिणी' रॉकेट छोड़ा गया था, उसमें करीब बत्तीस किलोग्राम वजन की एक ठोस प्रणोदन मोटर लगी थी और इसपर सात किलोग्राम वजन का पेलोड लगाया गया था, जिसे दस किलोमीटर की ऊँचाई पर स्थित कक्षा में प्रक्षेपित करना था। इसके कुछ समय पश्चात् एक और रॉकेट छोड़ा गया, जिसमें दो प्रणोदन मोटरें थीं तथा इसमें करीब सौ किलोग्राम वजन के बहुप्रयोगीय पेलोड लगे थे, जिन्हें पृथ्वी से तीन सौ पचास किलोमीटर ऊँची कक्षा में प्रक्षेपित किया गया था।

इन रॉकेटों के विकास का परिणाम यह रहा कि देश में ही साउंडिंग रॉकेटों एवं प्रणोदन इंजनों का निर्माण शुरू हो गया। इससे बहुत ही उच्च क्षमतावाले प्रणोदनों का तकनीकी विकास देश में ही होने लगा और पॉलीयूरेथेन एवं पॉलीब्यूरेन के ईंधनवाले रॉकेट इंजन देश में बनने लगे। बाद में प्रणोदन ईंधन परिसर की भी स्थापना की गई, जिसमें रॉकेट इंजनों के लिए जरूरी सामरिक रसायन (रासायनिक ईंधन) एवं प्रणोदकों के उत्पादन के लिए रॉकेट प्रोपेलेंट प्लांट (आर.जी.पी.) की स्थापना की गई।

बीसवीं सदी में भारतीय रॉकेटों के विकास को टीपू सुल्तान के अठारहवीं सदी के सपने को साकार होने के रूप में देखा जा सकता है। जब सन् 1799 में टीपू सुल्तान युद्ध में मारा गया था तब अंग्रेजों की सेना ने सात सौ से ज्यादा रॉकेट पकड़े थे और नौ सौ रॉकेटों की उपप्रणालियाँ पकड़ी थीं। उसकी सेना में सत्ताईस ब्रिगेड थीं, जिन्हें 'कुशून' कहा जाता था और हर ब्रिगेड में एक रॉकेट कंपनी थी। इसे 'जर्क्स' नाम से पुकारा जाता था। इन रॉकेटों को बाद में विलियम कांग्रेव इंग्लैंड ले गया था और इस तरह ये ब्रिटेन के हो गए। उस समय कोई गैट, आई.पी.आर एक्ट या पेटेंट कानून तो था नहीं। इस तरह टीपू सुल्तान की मौत के साथ ही भारतीय रॉकेट भी खत्म हो चुके थे—कम-से-कम एक सौ पचास साल

के लिए।

इसी बीच विदेशों में रॉकेट तकनीक काफी तेजी से विकसित हुई। सन् 1903 में कोंस्तेंतिन तिसिओलसेवस्की ने रूस में, सन् 1914 में रॉबर्ट गॉडर्ड ने अमेरिका में और सन् 1923 में हरमैन ओबर्थ ने जर्मनी में रॉकेट विज्ञान को नई दिशाएँ दीं। नाजी जर्मनी में वर्नर फॉन ब्रॉन समूह ने कम दूरी तक मार करनेवाली वी-2 मिसाइलें बनाईं और मित्र देशों की सेनाओं पर उन्हें इस्तेमाल किया गया। युद्ध के बाद अमेरिका और सोवियत संघ—दोनों जर्मनी की रॉकेट तकनीक एवं इंजीनियरों को अपने यहाँ ले गए और फिर इस लूट से ही दोनों देशों के बीच मिसाइल तथा दूसरे हथियारों सहित हथियारों की दौड़ शुरू हुई।

भारत में रॉकेट विज्ञान के पुनर्जन्म का श्रेय प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू के नई प्रौद्योगिकी के विकास की दृष्टि को जाता है। उनके इस सपने को साकार बनाने की चुनौती प्रो. साराभाई ने ली थी। हालाँकि कुछ संकीर्ण दृष्टि के लोगों ने उस समय यह सवाल उठाया था कि हाल में आजाद हुए जिस भारत में लोगों को खिलाने के लिए नहीं है उस देश में अंतरिक्ष कार्यक्रमों की क्या प्रासंगिकता है। लेकिन न तो प्रधानमंत्री नेहरू और न ही प्रो. साराभाई में इस कार्यक्रम को लेकर कोई अस्पष्टता थी। उनकी दृष्टि बहुत साफ थी—'अगर भारत के लोगों को विश्व समुदाय में अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभानी है तो उन्हें नई-से-नई तकनीक का प्रयोग करना होगा, तभी जीवन में आनेवाली समस्याएँ हल हो सकेंगी।' इसके माध्यम से उनका अपने शक्ति प्रदर्शन का कोई इरादा नहीं था।

□

: पाँच :

थुंबा के अपने लगातार होनेवाले दौरों के दौरान प्रो. साराभाई पूरी टीम के साथ बैठकर कामकाज की खुली समीक्षा करते। उन्होंने कभी भी निर्देश नहीं दिए; बल्कि विचारों के मुक्त आदान-प्रदान के माध्यम से वह हमें ऐसे नए रास्ते दिखाते थे, जिनसे प्राय: हम अप्रत्याशित हल खोज लेते थे। शायद उनको यह पता होता था कि हालाँकि एक लक्ष्य विशेष को लेकर वह सुनिश्चित हो सकते हैं और उसे पूरा करने के लिए पर्याप्त निर्देश भी दे सकते हैं, लेकिन हो सकता है कि उनकी टीम के सदस्य उस एक लक्ष्य को लेकर काम करने का विरोध कर दें, जिसका कि उनके लिए कोई अर्थ नहीं निकलता। उन्होंने किसी भी समस्या पर सामूहिक समझ बनाकर ही उसका हल निकालने का रास्ता अपनाया था, जो कि एक प्रभावशाली नेतृत्व की विशेषता होती है। एक बार उन्होंने मुझसे कहा, 'देखो, मेरा काम फैसले लेना ही नहीं है बल्कि यह देखना भी उतना ही महत्त्वपूर्ण है कि क्या ये फैसले मेरी टीम के सदस्यों को स्वीकार्य हैं।'

प्रो. साराभाई ने बहुत सारे फैसले लिये थे, जो आगे चलकर कई लोगों के जीवन का मिशन बने। हम खुद अपने रॉकेट बना सकें, हम अपने उपग्रह प्रक्षेपण यान (एस.एल.वी.) और अपने उपग्रह बना सकें। यह सब एक-एक करके नहीं बल्कि साथ-साथ हुआ—एक बहुआयामी तरीके से। साउंडिंग रॉकेटों के लिए पेलोडों के विकास में एक निश्चित पेलोड प्राप्त कर फिर उसे रॉकेट में लगाने के बजाय हमने विभिन्न संगठनों तथा अलग-अलग जगहों पर काम कर रहे पेलोड वैज्ञानिकों से इसपर विचार-विमर्श किया। मैं आज भी कह सकता हूँ कि साउंडिंग रॉकेट कार्यक्रम की सबसे ठोस उपलब्धि विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में राष्ट्र व्यापी आपसी विश्वास कायम करना और उसे बनाए रखना रही।

प्रो. साराभाई ने मुझे पेलोड वैज्ञानिकों की मदद करने का जिम्मा सौंपा। उस समय भारत की ज्यादातर प्रयोगशालाएँ साउंडिंग रॉकेट कार्यक्रम में जुटी हुई थीं,

हरेक का अपना मिशन था, अपने लक्ष्य थे और अपने पेलोड थे। इन पेलोडों को रॉकेटों में इस तरह लगाए जाने की जरूरत थी ताकि वे उड़ान की कठिन परिस्थितियों में भी सुचारु रूप से काम कर सकें। तारों के अध्ययन के लिए एक्स-रे पेलोड्स लगाए थे। पृथ्वी के ऊपरी वायुमंडल में गैसों के संघटन का विश्लेषण करने के लिए रेडियो फ्रीक्वेंसी मास स्पेक्ट्रोमीटर युक्त पेलोड्स लगाए गए। वायुमंडल की परिस्थितियाँ, उसकी दिशा एवं गति जानने के लिए सोडियम पेलोड्स का इस्तेमाल किया गया। मैं सिर्फ टी.आई.एफ.आर., राष्ट्रीय भौतिकी प्रयोगशाला (एन.पी.एल) और भौतिकी अनुसंधान प्रयोगशाला (पी.आर.एल.) के वैज्ञानिकों के साथ ही नहीं बल्कि अमेरिका, सोवियत रूस, फ्रांस, जर्मनी और जापान के पेलोड वैज्ञानिकों के साथ भी लगातार संपर्क बनाए हुए था।

मैंने प्राय: खलील जिब्रान को पढ़ा है और उनकी बातें मुझे बुद्धिमत्तापूर्ण लगी हैं—'बिना स्नेह के बनाया गया भोजन उस अन्न के समान है जिसे व्यक्ति खा तो लेता है, लेकिन वह भोजन उसकी आधी भूख ही शांत कर पाता है।' जो लोग किसी काम को दिल लगाकर नहीं करते, बल्कि बेमन से करते हैं, उन्हें फिर आधी-अधूरी सफलता ही मिलती है और इससे उनमें अप्रसन्नता घर करने लगती है। अगर आप एक लेखक हैं, जो एक वकील या डॉक्टर बनना चाहता था, तो ऐसे में आपका लेखन पाठकों को कुछ देगा तो सही, लेकिन उनकी भूख शांत नहीं कर पाएगा। अगर आप ऐसे शिक्षक हैं, जो शिक्षक कम और व्यवसायी ज्यादा हैं, तो आप छात्रों की आधी जरूरत ही पूरी कर पाएँगे। यदि आप ऐसे वैज्ञानिक हैं जिसे विज्ञान से लगाव नहीं है तो ऐसी सूरत में आप काम तो संतोषजनक कर लेंगे, लेकिन आपका मिशन पूरा नहीं हो सकेगा। कड़ी मेहनत करते रहने के बाद भी अपेक्षित परिणाम नहीं मिलने पर व्यक्तिगत अप्रसन्नता या असफलता कोई नई बात नहीं है। लेकिन प्रो. ओदा एवं सुधाकर जैसे इसके अपवाद भी हैं, जिन्होंने अपने विशिष्ट गुणों, व्यक्तित्व, अंत:प्रेरणा और शायद हृदय के भीतर सपने साकार करने की इच्छा से ही अपने काम को जी-जान से पूरा किया। वे अपने काम से भावनात्मक रूप से इस कदर जुड़ जाते थे कि सफलता की उनकी कोशिशों में जरा भी कमी उन्हें व्यथित कर देती थी।

प्रो. ओदा जापान के इंस्टीट्यूट ऑफ स्पेस एंड एयरोनॉटिकल साइंसेज (आई.एस.ए.एस.) के एक एक्स-रे पेलोड वैज्ञानिक थे। मैं उन्हें छोटी कद-काठी, पर विशाल व्यक्तित्ववाले उस शख्स के रूप में याद करता हूँ जिसकी आँखों से बौद्धिकता झलकती थी। कार्य के प्रति उनका जो समर्पण था, वह एक

आदर्श उपस्थित करता है। आई.एस.ए.एस. से उनके द्वारा लाए गए एक्स-रे पेलोडों और प्रो. यू.आर. राव द्वारा बनाए गए पेलोडों को मेरी टीम रोहिणी रॉकेट के अग्रभाग में लगाती। एक सौ पचास किलोमीटर की ऊँचाई पर रॉकेट के अग्रभाग को उच्च ताप के विस्फोट से अलग कर दिया जाता था। यह विस्फोट एक इलेक्ट्रॉनिक टाइमर से किया जाता है। इन एक्स-रे पेलोडों के तारों से उत्सर्जित होनेवाले विकिरण के बारे में आवश्यक जानकारियाँ हासिल करनी थीं। प्रो. ओदा एवं प्रो. राव में प्रतिभा और समर्पण एक-दूसरे से अद्वितीय मेल खाते थे। ऐसा प्राय: मुश्किल से ही देखने में आता है। एक दिन जब मैं अपने टाइमर डिवाइस के साथ रॉकेट में प्रो. ओदा के पेलोड को लगा रहा था, तभी प्रो. ओदा ने मुझे वे टाइमर लगाने पर जोर दिया, जो कि वे जापान से लेकर आए थे। मुझे वे टाइमर हलके किस्म के लगे। लेकिन प्रो. ओदा अपनी इस बात पर दृढ़ थे कि भारत में तैयार किए गए टाइमरों की जगह जापान में बने टाइमर ही लगने चाहिए। मैंने उनका सुझाव मान लिया और टाइमरों को बदल दिया। इसके बाद रॉकेट छोड़ दिया गया और अपेक्षित ऊँचाई पर पहुँच गया। लेकिन दूरमापीय संकेतों से पता चला कि टाइमर में गड़बड़ी आ जाने की वजह से मिशन सफल नहीं हुआ। इस असफलता से प्रो. ओदा बहुत ही विचलित हुए और उनकी आँखों में आँसू आ गए। उनकी इस भावनात्मक प्रतिक्रिया ने मुझे बहुत प्रभावित किया। अपने कार्य में उनका दिल एवं आत्मा पूरी तरह समाई रहती थी।

पेलोड प्रिपरेशन लेबोरेटरी में सुधाकर मेरे सहकर्मी थे। प्रक्षेपण के पूर्व हम सोडियम और थरमाइट मिश्रण को भर रहे थे तथा दबाव उत्पन्न कर रहे थे। थुंबा में उस दिन गरमी एवं उमस थी। ऐसी छठी प्रक्रिया के बाद सुधाकर और मैं पेलोड रूम में यह पुष्टि करने गए कि क्या सोडियम एवं थरमाइट का मिश्रण पूरी तरह भरा जा चुका है या नहीं। तभी अचानक सुधाकर के माथे से पसीने की एक बूँद सोडियम पर गिर गई और इससे पहले कि हम कुछ समझ पाते, एक भयंकर विस्फोट हुआ। विस्फोट इतना जबरदस्त था कि कमरा तक हिल गया। कुछ क्षण तो मैं भी यह नहीं समझ पाया कि क्या किया जाए। आग फैलती जा रही थी और इस सोडियम आग को पानी से बुझाया नहीं जा सकता था। इस संकटपूर्ण परिस्थिति में भी सुधाकर ने धैर्य नहीं खोया और सूझबूझ से काम लिया। उसने अपने हाथों से काँच की खिड़की तोड़ दी और खुद बाहर कूदने के पहले मुझे वहाँ से सुरक्षित बाहर निकाल दिया। उसके जख्मी हाथों को छूते हुए मैंने कृतज्ञता व्यक्त की। दर्द के बावजूद वह मुसकरा रहा था। इसके बाद उसे कई हफ्ते तक अस्पताल में रहना

पड़ा, जहाँ उसके जले घावों का इलाज हो रहा था।

टी.ई.आर.एल.एस. में मैं रॉकेट तैयार करने संबंधी गतिविधियों में लगा हुआ था। इनमें पेलोड जोड़ने, परीक्षण और उनकी जाँच, उप-प्रणालियाँ तैयार करने तथा रॉकेट के अगले हिस्से से संबंधित कार्य भी थे। इस प्रकार अग्रभाग से जुड़े काम करते-करते मैं मिश्रित धातुओं के क्षेत्र में भी काम करने लगा था।

यह जानना दिलचस्प होगा कि देश के विभिन्न भागों में हुई पुरातात्त्विक खुदाई में जो धनुष मिले, उससे यह रहस्योद्घाटन होता है कि भारत के लोग लकड़ी, सींग आदि से बनाए सम्मिश्रित धनुष इस्तेमाल करते थे। मध्यकालीन यूरोप में जब इनका प्रचलन था, उससे भी कम-से-कम पाँच सौ साल पहले भारत में ये इस्तेमाल किए जाते थे। सींग से बने धनुष तो ग्यारहवीं सदी में प्रयोग में लाए जाते थे। इस सम्मिश्रण की बहुविज्ञता इस अर्थ में है कि इसके संरचनात्मक, तापीय, विद्युतीय, रासायनिक और यांत्रिक गुणों ने मुझे काफी आकर्षित किया। मनुष्य द्वारा बनाए इन पदार्थों के बारे में मेरी उत्सुकता इतनी बढ़ जाती थी कि मैं एक रात में सबकुछ जान लेना चाहता था। मैं इन विषयों से संबंधित हर चीज, जो भी नजर आती है, अभी भी पढ़ता रहता हूँ। विशेष रूप से मैं काँच एवं कार्बन फाइबर रेनफोर्स्ड प्लास्टिक (एफ.आर.पी.) के यौगिक में ज्यादा रुचि लेता था।

एफ.आर.पी. सम्मिश्रण अकार्बनिक तंतुओं का एक ऐसा बुना हुआ जाल होता है जिसमें तंतु आपस में एक-दूसरे से मजबूती से गुँथे हुए होते हैं, जिन्हें रासायनिक पदार्थों का मिश्रण अपनी मात्रानुसार आयतन एवं आकार प्रदान करता है। फरवरी 1969 में तत्कालीन प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी टी.ई.आर.एल.एस. को अंतरराष्ट्रीय अंतरिक्ष विज्ञान समुदाय को समर्पित करने के लिए थुंबा आईं। इस अवसर पर उन्होंने हमारी प्रयोगशाला में देश की पहली फिलामेंट वाइंडिंग मशीन चालू की। इससे मेरी टीम को बहुत ही संतोष हुआ। मेरी टीम में जो साथी थे, उनमें सी.आर. सत्या, पी.एन. सुब्रह्मण्य और एम.एन. सत्यनारायण थे। हमने गैर चुंबकीय पेलोड ढाँचे के लिए उच्च शक्ति की काँच की परतवाले आवरण को तैयार किया था और उन्हें दो चरणों में साउंडिंग रॉकेटों के साथ उड़ाया था।

धीरे-धीरे, लेकिन निश्चित रूप से, थुंबा में दो भारतीय रॉकेट तैयार किए गए थे। इन्हें हमारे पौराणिक पात्रों—'रोहिणी' और 'मेनका' के आधार पर नाम दिया गया। भारतीय पेलोडों (उपग्रहों) को फ्रांस के रॉकेटों से छोड़े जाने की अब और आवश्यकता नहीं रह गई थी। लेकिन क्या ऐसा उस विश्वास के माहौल और प्रतिबद्धता के बिना संभव हो सकता था, जो प्रो. साराभाई ने भारतीय अंतरिक्ष

अनुसंधान समिति के लोगों के भीतर पैदा की थी ? उन्होंने हर व्यक्ति के ज्ञान और कुशलता का उपयोग किया था। समस्याओं के हल ढूँढ़ने में भी उन्होंने हर व्यक्ति की प्रत्यक्ष एवं सीधी भागीदारी बनाई थी। इस प्रकार टीम के हर सदस्य की हिस्सेदारी से ही कोई भी समस्या बहुत ही मान्य एवं उचित ढंग से हल हो जाती थी और आनेवाले परिणाम में पूरी टीम का विश्वास कायम होता था।

प्रो. साराभाई ने वास्तव में कभी भी अपने असंतोष को छिपाने की कोशिश नहीं की। वह हमसे बहुत ही सच्चाई से तथा उद्देश्यपूर्ण ढंग से बातें किया करते थे। कई बार मैंने पाया कि वह चीजों को उनकी वास्तविकता की तुलना में कहीं ज्यादा सकारात्मक रूप में देखते थे। जब हम लोग ड्राइंग बोर्ड पर काम कर रहे होते तो तकनीकी समझौते के लिए वह विकसित देश के किसी व्यक्ति को ले आते। हमारी क्षमताओं को बढ़ाने के लिए हममें से हरेक के समक्ष चुनौती पैदा करने का उनका यह विलक्षण तरीका था।

इसीके साथ ही, अगर हम निश्चित लक्ष्यों को हासिल कर पाने में असफल रहते तब भी वह हमारी प्रशंसा करते, चाहे हमने जैसा भी काम किया हो। जब कभी वह यह पाते कि हममें से कोई ऐसा काम करने की कोशिश कर रहा है जो उसकी क्षमता से बाहर है या उसे वह पूरी कुशलता से नहीं कर सकता तो ऐसे में प्रो. साराभाई काम को इस तरह से बाँटते कि ज्यादा दबाव भी न हो और वह बढ़िया तरीके से पूरा हो जाए। 20 नवंबर, 1967 को जब टी.ई.आर.एल.एस. से पहला रोहिणी-75 रॉकेट छोड़ा गया था तब हममें से हरेक उनके स्वयं के साँचे में ढल चुका था।

अगले साल के शुरू में प्रो. साराभाई ने मुझे तत्काल मिलने के लिए दिल्ली बुलाया। मैं प्रो. साराभाई के काम करने के तरीकों से भलीभाँति परिचित था। वह उत्साह एवं आशाओं से हमेशा सराबोर रहते थे। ऐसी स्थिति में अचानक प्रेरणा उत्पन्न होना स्वाभाविक ही है। दिल्ली पहुँचते ही मैंने प्रो. साराभाई के सचिव से मुलाकात के लिए समय माँगा। मुझे तड़के साढ़े तीन बजे अशोक होटल में उनसे मिलने का समय मिला। दिल्ली मेरे लिए थोड़ी अपरिचित जगह थी और मेरे जैसे व्यक्ति को यहाँ की जलवायु भी रास नहीं आती थी। रात को खाना खाने के बाद मैं होटल की लॉबी में उनकी प्रतीक्षा करने लगा।

मैं हमेशा से एक धार्मिक व्यक्ति रहा हूँ तथा मेरा मानना रहा है कि ईश्वर के साथ हर काम में मेरी सहभागिता है। मुझे मालूम था कि जितनी योग्यता मेरे पास है, अच्छा काम करने के लिए उससे और ज्यादा योग्यता होनी जरूरी है। इसलिए

मुझे मदद की आवश्यकता है और वह सिर्फ ईश्वर ही दे सकता है। मैंने खुद अपनी योग्यता का सही-सही अनुमान लगाया और इसे पचास फीसदी तक बढ़ा दिया। फिर मैं अपने को ईश्वर के हाथों में सौंप देता था। इस भागीदारी में मुझे वह सारी शक्ति मिली है, जिसकी मुझे जरूरत थी और वास्तव में मैं आज भी महसूस करता हूँ कि वह शक्ति मुझमें बह रही है। आज मैं यह पक्के तौर पर कह सकता हूँ कि इसी शक्ति के रूप में ईश्वर आपके भीतर है। इसी शक्ति से आप अपने उद्देश्यों को हासिल कर अपने सपनों को साकार कर सकते हैं।

अनुभव के कई विभिन्न प्रकार और स्तर हैं, जो इस आंतरिक शक्ति की क्रिया को जटिल बना देते हैं। जब कभी हम उसके साथ अपना संबंध कायम कर रहे होते हैं तो हम अपने को अंतर्दृष्टि एवं बुद्धिमत्ता से भरा पाते हैं। यह किसी दूसरे व्यक्ति से आ सकती है; एक शब्द, एक प्रश्न और यहाँ तक कि एक दृष्टि से भी मिल जाती है। कई बार यह किसी पुस्तक के माध्यम से, बातचीत से, किसी कविता की पंक्ति से और किसी चित्र के एक हिस्से से भी प्राप्त कर लेते हैं। एक हलकी सी चेतावनी के बिना ही आपके जीवन में कोई भी नई शुरुआत हो सकती है और कोई फैसला हो जाता है—एक ऐसा फैसला जिसके बारे में आपको पता भी नहीं चल पाता।

मैं होटल की भव्य लॉबी को देखता रहा। पास ही सोफे पर कोई एक किताब छोड़ गया था। विचारों की गरमाहट से उस ठंडी रात के कुछ घंटे काटने थे। मैंने किताब उठा ली और पन्ने उलटने लगा। मैंने उस किताब के कुछ ही पन्ने पलटे होंगे, जिनके बारे में मुझे अब कुछ-कुछ याद है।

वह व्यवसाय प्रबंधन से संबंधित एक लोकप्रिय पुस्तक थी। मैंने वह किताब पढ़ी नहीं थी, सिर्फ पन्ने पलटे थे और कुछ हिस्सों पर निगाह डालता गया था। अचानक किताब के एक अंश पर मेरी निगाह पड़ी, इसमें जॉर्ज बर्नार्ड शॉ का एक उद्धरण प्रस्तुत किया गया था। इस उद्धरण का सार यह था कि सभी बुद्धिमान मनुष्य अपने को दुनिया के अनुरूप ढाल लेते हैं। सिर्फ कुछ ही लोग ऐसे होते हैं, जो दुनिया को अपने अनुरूप बनाने में लगे रहते हैं। दुनिया में सारी तरक्की इन दूसरे तरह के लोगों पर ही निर्भर होती है, जो हमेशा कुछ नया कर परिवर्तन लाने में लगे रहते हैं।

मैंने बर्नार्ड शॉ के इस हिस्से से आगे किताब पढ़नी शुरू की। लेखक ने इस किताब में उद्योग एवं व्यापार में नए परिवर्तन लाने की प्रक्रिया और अवधारणा को लेकर चारों ओर बनी हुई कुछ काल्पनिक बातों का वर्णन किया था। मैंने सामरिक

योजना से संबंधित कल्पनाओं के बारे में पढ़ा। सामान्यतया ऐसा माना जाता है कि व्यावहारिक एवं ठोस सामरिक तथा तकनीकी योजना ऐसे परिणामों की संभावना बढ़ाती है, जिन्हें लेकर कोई आश्चर्य नहीं होता और वे अप्रत्याशित भी नहीं लगते। लेखक की राय यह थी कि किसी भी परियोजना प्रबंधक को अनिश्चितता एवं अस्पष्टता के साथ जीना आना जरूरी है। लेखक का मानना था कि गणना करने की क्षमता ही सफलता की कुंजी है, यह एक परिकल्पना है। दूसरी ओर जनरल जॉर्ज पैटन का भी एक उद्धरण इस कल्पना के सुसंगत रूप में इस प्रकार है— 'किसी भी अच्छी योजना को तुरंत ही असरदार तरीके से लागू कर देना ज्यादा अच्छा है, बजाय इसके कि कोई अच्छी योजैना अगले हफ्ते लागू की जाए। यह एक ऐसी कल्पना है कि बड़ी जीत के लिए हरेक को आशावादी होना चाहिए।'

होटल की लॉबी में रात का एक बज रहा था। अभी मुझे प्रो. साराभाई से मुलाकात करने के लिए दो घंटे और प्रतीक्षा करनी थी। मुलाकात का यह समय न तो मेरे लिए, न ही प्रो. साराभाई के लिए उपयुक्त लग रहा था। लेकिन तब प्रो. साराभाई हमेशा अपने गुणों में एकदम स्वच्छंद नजर-आते थे। वे देश का अंतरिक्ष अनुसंधान कार्यक्रम चला रहे थे। हालाँकि काम करनेवाले स्टाफ की कमी थी और काम काफी ज्यादा था, फिर भी वे सफलतापूर्वक तरीके से काम किए जा रहे थे।

अचानक मेरे सामनेवाले सोफे पर दूसरा व्यक्ति आकर बैठ गया। वह एक हट्टा-कट्टा और बुद्धिमान व्यक्ति दिख रहा था। मेरे से ठीक उलटा उस व्यक्ति ने बहुत ही सलीके से कपड़े पहने हुए थे। आधी रात का वक्त होते हुए भी वह शख्स बहुत ही चौकन्ना एवं फुरतीला नजर आ रहा था।

उस व्यक्ति के चुंबकत्व जैसे आकर्षण ने मेरे भीतर उमड़ रहे नए विचारों की रेलगाड़ी को पटरी से उतार दिया था। मैं दोबारा किताब पढ़ना शुरू करता; इससे पहले ही मुझे सूचना मिली कि प्रो. साराभाई मुझसे मिलने के लिए तैयार हैं। मैंने उस किताब को पास में पड़े उसी सोफे पर रख दिया, जहाँ से उसे उठाया था। मुझे आश्चर्य हो रहा था कि जो व्यक्ति मेरे सामने सोफे पर बैठा था उसे भी अंदर आने को कहा गया था। यह है कौन? मेरे इस सवाल का जवाब जल्दी ही मुझे मिल गया। हम बैठ पाते, उससे पहले ही प्रो. साराभाई ने हमारा एक-दूसरे से परिचय कराया। वह शख्स वायुसेना मुख्यालय से आए ग्रुप कैप्टन वी.एस. नारायणन थे।

प्रो. साराभाई ने हम दोनों के लिए कॉफी मँगाई और सैनिक विमान के लिए रॉकेट असिस्टेड टेक ऑफ सिस्टम (राटो) विकसित करने की अपनी योजना के बारे में बताया। यह राटो प्रणाली हिमालय क्षेत्र में छोटे रन-वे से विमानों को उड़ान

भरने में सहायता करने को लेकर थी। जो कुछ किया जाना था, उसे लेकर संक्षिप्त सी बात हुई और हमें कॉफी दी गई। जैसे ही हमने कॉफी खत्म की, प्रो. साराभाई खड़े हुए और हमसे दिल्ली के बाहरी इलाके में स्थित तिलपत रेंज ले चलने को कहा। जब हम होटल की लॉबी से गुजर रहे थे तभी मैंने उस सोफे पर नजर डाली जहाँ मैंने उस किताब को छोड़ दिया था। लेकिन अब वह किताब उस जगह नहीं थी।

तिलपत रेंज का करीब घंटे भर का रास्ता था। प्रो. साराभाई ने हमें रूसी राटो मोटर दिखाई। उन्होंने हमसे पूछा, 'अगर मैं आपको रूस से इस प्रणाली की मोटरें ला दूँ तो क्या आप अठारह महीने में इसे अपने यहाँ तैयार कर सकते हैं ?'

मैंने और ग्रुप कैप्टन वी.एस. नारायणन ने साथ-साथ ही कहा, 'हाँ, कर सकते हैं।' मुसकराहट के साथ ही प्रो. साराभाई का चेहरा चमक रहा था।

हमें वापस होटल अशोक छोड़ने के बाद प्रो. साराभाई प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी के घर गए। वहाँ प्रधानमंत्री के साथ नाश्ते पर उनकी बैठक होनी थी। शाम तक इस परियोजना की सार्वजनिक रूप से घोषणा कर दी गई कि भारत सैनिक विमानों के उड़ान भरने की एक नई स्वदेशी तकनीक विकसित करने जा रहा है। मेरी खुशी की सीमा नहीं थी और मैं उत्साह से सराबोर था। तभी मुझे उन्नीसवीं सदी के एक कवि की ये पंक्तियाँ याद आईं—

'हर दिन जियो, जियाले
जैसा जीवन अपना पाओ।
जब मूसल हो, मारो,
जब ओखल हो, चोटें खाओ।'

सैनिक विमानों को उड़ान भरने के लिए अतिरिक्त बल देने के उद्देश्य से उनपर राटो मोटरें लगा दी जाती हैं, जिससे विमान विपरीत एवं कठिन परिस्थितियों में भी उड़ान भर पाने में सक्षम होता है। विपरीत परिस्थितियाँ इस प्रकार की हैं— बमबारी से हवाई पट्टी खराब हो जाना, बहुत ज्यादा ऊँचाई पर बने वायुसेना क्षेत्र, निर्धारित क्षमता से ज्यादा भार उठाना या बहुत ही ज्यादा तापमान होना आदि। भारतीय वायुसेना को अपने एस.-22 और एच.एफ.-24 विमानों के लिए बड़ी संख्या में राटो मोटरों की सख्त जरूरत थी।

तिलपत रेंज में हमें जो रूसी राटो मोटर दिखाई गई थी, वह तीन हजार किलोग्राम भार की वस्तु को चौबीस हजार पाँच सौ किलोग्राम प्रति सेकंड के वेग से उठा सकती थी। दो सौ बीस किलोग्राम भार की यह राटो मोटर दोहरे प्रणोदन

आधारवाली थी। स्वदेशी राटो मोटर के विकास का काम स्पेस साइंस एंड टेक्नोलॉजी सेंटर में होता था और इस काम में डिफेंस रिसर्च एंड डेवलपमेंट ऑर्गेनाइजेशन (डी.आर.डी.ओ.), एच.ए.एल., डी.टी.डी. एंड पी. (एयर) तथा वायुसेना मुख्यालय को हमारी मदद करनी थी।

उपलब्ध विकल्पों के विस्तृत विश्लेषण के बाद मैंने फाइबर ग्लास मोटर का विकल्प चुना। हमने इस मोटर में ईंधन के रूप में कंपोजिट प्रोपेलेंट के इस्तेमाल का फैसला किया था, ताकि इसे पूर्णरूप से तथा लंबे समय तक उपयोग में लाया जा सके। मैंने इसमें अतिरिक्त सुरक्षा के लिए पटल भी लगाने का फैसला किया, ताकि अगर दबाव कक्ष में यदि किसी कारणवश दबाव बहुत ज्यादा हो भी जाए तब भी दबाव कक्ष फटे नहीं और मोटर में कोई गड़बड़ी न आए।

राटो पर काम करते हुए दो महत्त्वपूर्ण बातें और हुईं। एक तो यह कि देश के अंतरिक्ष अनुसंधान के एक दशक के कामकाज पर प्रो. साराभाई द्वारा तैयार की गई एक रूपरेखा जारी की गई। यह शीर्ष व्यक्ति द्वारा अपनी टीम के लिए कोई बनाई गई कार्य योजना नहीं थी बल्कि इसे जारी करने का उद्देश्य तो खुली बहस कराना था, ताकि बाद में इसे एक कार्यक्रम के रूप में बदला जा सके। असल में मैंने पाया कि यह ऐसे व्यक्ति का रोमानी घोषणापत्र था जो पूरी तरह अपने देश के अंतरिक्ष अनुसंधान कार्यक्रम में डूबा हुआ था।

योजना मुख्यत: उन्हीं विचारों के इर्द-गिर्द केंद्रित थी, जो शुरू में भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान समिति के समक्ष आए थे। इनमें टेलीविजन और शिक्षा के विकास, मौसम विज्ञान संबंधी प्रयोग तथा प्राकृतिक संसाधनों के विकास के लिए दूरसंवेदी उपग्रहों के इस्तेमाल की योजना भी शामिल थी। इसके अलावा उपग्रह प्रक्षेपण यानों के विकास और उनको छोड़े जाने की योजनाएँ भी इस प्रारंभिक योजना में थीं।

शुरू के वर्षों में जो सक्रिय अंतरराष्ट्रीय सहयोग मिला था, उसे इस योजना में ज्यादा महत्त्व दिया गया था। साथ ही इस योजना में आत्मनिर्भर होने एवं स्वदेशी तकनीकियाँ विकसित करने पर ज्यादा जोर दिया गया था। इसमें हलके उपग्रहों को पृथ्वी की कक्षा में स्थापित करने के लिए एस.एल.वी. की बात की गई थी। इसके अलावा भारतीय उपग्रहों के विकास एवं अंतरिक्ष यानों की उपप्रणालियों जैसे बूस्टर मोटर, मोमेंटम व्हील एवं सौर ऊर्जा पैनल लगाने के तरीकों पर भी विस्तार से ध्यान दिया गया था। इसके अतिरिक्त गैर अंतरिक्ष उपयोग से संबंधित टेक्नोलॉजी के विकास का भी वायदा किया गया था। कुल मिलाकर एक इस प्रकार के सपने

का ढाँचा तैयार किया गया था, जो इंजीनियरिंग एवं वैज्ञानिक क्षेत्र में शोध तथा विकास को पूरी तरह से बढ़ावा दे।

प्रो. साराभाई द्वारा जारी योजना का दूसरा महत्त्वपूर्ण परिणाम यह था कि रक्षा मंत्रालय में एक मिसाइल पैनल बन गया। इस पैनल में मुझे एवं नारायणन को सदस्यों के रूप में शामिल किया गया। अपने ही देश में मिसाइलें बनाने का विचार बहुत ही रोमांचकारी एवं उत्साहवर्द्धक था और फिर हमने विकसित देशों की मिसाइलों के बारे में अध्ययन किया।

टैक्टिकल मिसाइल और स्ट्रेटेजिक मिसाइल में एक बहुत साफ फर्क है। आमतौर पर 'स्ट्रेटेजिक' का मतलब यह समझा जाता है कि यह मिसाइल हजारों किलोमीटर उड़ेगी। हालाँकि युद्ध में यह मिसाइल प्रक्षेपक से दूरी की बजाय लक्ष्य का प्रकार प्रदर्शित करती है। स्ट्रेटेजिक मिसाइलें वे हैं, जो दुश्मन के केंद्रीय भू-भाग पर स्थित ठिकानों पर हमला करती हैं—यानी दुश्मन के शहरों को निशाना बनाती हैं। जबकि टैक्टिकल मिसाइलें वे हैं, जो युद्ध को प्रभावित करती हैं। यह युद्ध जमीन, आकाश, पानी अथवा तीनों जगह हो सकता है। लेकिन अमेरिकी वायुसेना की टॉमहॉक मिसाइलों के टैक्टिकल मिसाइल की भूमिका में प्रयोग में आने के बाद यह वर्गीकरण अब निरर्थक सा हो गया है। जमीन से ही छोड़ी जानेवाली टॉमहॉक मिसाइलों की क्षमता तीन हजार किलोमीटर की है। हालाँकि उन दिनों स्ट्रेटेजिक मिसाइल मध्यम दूरी तक मार करने की क्षमता रखनेवाली बैलेस्टिक मिसाइलों (आई.आर.बी.एम.) एवं अंतरमहाद्वीपीय बैलेस्टिक मिसाइलों (आई.सी.बी.एम.) के बराबर ही थी। आई.आर.बी.एम. की क्षमता दो हजार सात सौ अस्सी किलोमीटर तक है तथा आई.सी.बी.एम. की क्षमता इससे भी ज्यादा दूरी तक मार कर सकने की है।

स्वदेशी मिसाइलों के कार्यक्रम को लेकर ग्रुप कैप्टन नारायणन में अकथनीय उत्साह था। वे रूस के रूसी मिसाइल विकास कार्यक्रम के घोर प्रशंसक थे। वे अकसर मुझे उकसाते हुए कहा करते थे—'जब यह वहाँ हो सकता है तो यहाँ क्यों नहीं, जहाँ मिसाइल टेक्नोलॉजी के लिए अंतरिक्ष शोध पहले ही जमीन तैयार कर चुका है।'

सन् 1962 और 1965 के दो युद्धों में भारतीय नेतृत्व को जिन दुःखद अध्यायों को देखना पड़ा, उसके बाद सैनिक साजो-सामान एवं हथियारों के क्षेत्र में आत्मनिर्भरता हासिल करने की जरूरत महसूस हुई। भारत ने रूस से बड़ी संख्या में जमीन से हवा में मार करनेवाली मिसाइलें (एस.ए.एम.) हासिल कीं। तब ग्रुप

कैप्टन नारायणन ने इस तरह की मिसाइलें देश में ही विकसित करने की जोरदार ढंग से वकालत की।

राटो मोटरों एवं मिसाइल पैनल में साथ-साथ काम करते हुए नारायणन और मैंने जरूरत के अनुसार एक-दूसरे के लिए शिष्य एवं गुरु की भूमिका निभाई। रॉकेट विज्ञान के बारे में सीखने के लिए वे बहुत ही आतुर रहते थे और मैं हवाई हथियारों की प्रणालियों को जानने का इच्छुक रहता था। नारायणन के भीतर जो दृढ़ आत्मविश्वास था और उसे प्रयोग करने की उनमें जो प्रबल शक्ति थी, वह प्रेरणादायक थी। प्रो. साराभाई के साथ तिलपत रेंज के दौरे के समय से ही नारायणन हमेशा अपनी राटो मोटर में व्यस्त रहते थे। वे कहने से पूर्व ही उन सब चीजों का बंदोबस्त कर लेते थे, जिनकी जरूरत पड़ती थी। उन्होंने अपने काम को आगे बढ़ाने और किसी भी कीमत पर उसे पूरा करने की वचनबद्धता के साथ पचहत्तर लाख रुपए हासिल किए थे। उनका कहना था—'तुम चीज का नाम बताओ, मैं तुम्हें लाकर दूँगा; लेकिन समय के लिए मत पूछो।' उस वक्त मुझे उनकी बेचैनी पर हँसी आती थी। मैं उनके लिए टी.एस. इलियट की 'होलो मेन' कविता की ये पंक्तियाँ पढ़ता था—

'परिकल्पना और सृजन के बीच,
भावना और कर्म के बीच,
पड़ती है परछाईं।
जिससे बनता जीवन,
जीवन की भंगुरता।'

उस समय रक्षा अनुसंधान एवं विकास का काम पूरी तरह आयातित उपकरणों पर आधारित था। स्वदेशी के तौर पर कुछ भी उपलब्ध नहीं था। हम दोनों ने जरूरी उपकरणों एवं कल-पुरजों की एक लंबी सूची बनाई और आयात योजना तैयार की। लेकिन मुझे यह बहुत ही बुरा लगा। क्या इसका कोई इलाज या विकल्प नहीं है? क्या पेचकस तकनीक के सहारे ही जिंदा रहना इस देश की नियति है? क्या भारत जैसा गरीब राष्ट्र इस तरह के विकास पर होनेवाले खर्च को बरदाश्त कर पाएगा?

जब से मैंने राटो परियोजना को हाथ में लिया था, उसके बाद से दफ्तर में देर तक काम करना एक नियम सा बन गया था। एक दिन मैंने देखा कि हमारे एक नौजवान साथी जयाचंद्र बाबू घर जा रहे हैं। वे कुछ महीने पहले ही हमारी इस परियोजना में शामिल हुए थे। उनके बारे में एकमात्र बात जो मैं जानता था वह यह

थी कि वे बहुत ही सकारात्मक दृष्टि तथा स्पष्ट कहनेवाले थे। मैंने उन्हें अपने दफ्तर में बुलाया। मैंने पूछा, 'क्या तुम्हारे पास जरूरी विदेशी कल-पुरजों की खरीद के बारे में कोई सुझाव है ?' कुछ क्षण के लिए बाबू चुपचाप खड़े रहे और अगले दिन शाम तक के लिए समय माँगा।

अगले दिन शाम को बाबू मेरे पास निर्धारित समय पर आ गए। वायदे के साथ उनका चेहरा दमक रहा था—'हम इसे कर सकते हैं, सर! बिना आयातित उपकरणों के राटो प्रणाली विकसित की जा सकती है। इसमें सिर्फ दो बड़ी दिक्कतें हैं, संगठन के प्रबंधन और ठेकेदारी को लेकर। यही दो बड़े क्षेत्र हैं, जिनसे हम आयात टाल सकते हैं।' बाबू ने मुझे सात बिंदु गिनाए या कहिए, सात मामलों में आजादी दिए जाने की बात कही। ये मुख्य बातें थीं—वित्तीय मंजूरी का काम सभी स्तरों पर न होकर सिर्फ एक व्यक्ति के हाथ में हो, परियोजना से संबंधित सभी कार्यों के लिए हवाई यात्रा की छूट मिले—चाहे वह व्यक्ति इसका हकदार हो या नहीं, सिर्फ एक ही व्यक्ति की जवाबदेही तय की जाए, परियोजना से संबंधित उपकरण-सामान हवाई परिवहन से मँगाया जाए, निजी क्षेत्र को काम दिए जाएँ, तकनीकी तुलना के आधार पर ही ऑर्डर दिए जाएँ तथा संगठन के हिसाब-किताब की प्रक्रिया और तेज हो।

सरकारी विभागों में इस तरह की माँगें पहले कभी नहीं सुनी गई थीं। फिर भी मुझे बाबू के प्रस्ताव ठोस एवं सही लगे। राटो परियोजना एक नए काम की शुरुआत थी और अगर इसमें कुछ नए नियम-कायदे बना दिए जाते तो कुछ गलत नहीं था। मैंने सारी रात बाबू के सुझावों पर गहराई से विचार किया और अंत में इन सुझावों को प्रो. साराभाई के समक्ष रखने का फैसला किया। प्रशासनिक उदारीकरण के लिए मेरी दलीलें सुनकर प्रो. साराभाई ने बिना एक क्षण भी सोचे इन प्रस्तावों को मंजूरी दे दी।

अपने सुझावों से बाबू ने विकास कार्यों में भी कुशाग्र बुद्धिवाले व्यवसायी व्यक्ति की महत्ता को रेखांकित किया था। मौजूदा मापदंडों के भीतर चीजों को और ज्यादा तेजी से चलाने के लिए उसमें आपको और ज्यादा लोगों को लगाना पड़ेगा, ज्यादा चीजों की जरूरत होगी तथा पैसा भी ज्यादा लगाना होगा। अगर आप ये सब नहीं कर सकते हैं तो अपने मापदंडों को बदल दीजिए। एक सहज व्यवसायी की तरह का यह नौजवान बहुत लंबे समय तक हमारे साथ नहीं रहा और इसरो छोड़कर नाइजीरिया चला गया। वित्तीय सौदों में बाबू की सूझबूझ को मैं कभी नहीं भूल सकता।

राटो मोटर केसिंग के लिए हमने मिश्रित संरचना (कंपोजिट स्ट्रक्चर) का विकल्प चुना था और इसमें फिलामेंट फाइबर ग्लास का इस्तेमाल किया गया। इसके अलावा हमने तय समय में उच्च ऊर्जावाले कंपोजिट प्रोपेलेंट, घटना–आधारित प्रज्वलन प्रणाली तथा जेट प्रणाली का भी विकास कर लिया था। हमने राटो का पहला परीक्षण परियोजना शुरू होने के बारहवें महीने में कर लिया था। इसके बाद अगले चार महीने में इसके चौंसठ परीक्षण किए गए; जबकि इस परियोजना में कुल जमा बीस इंजीनियर काम कर रहे थे।

□

: छह :

इस समय तक भविष्य के उपग्रह प्रक्षेपण यान (एस.एल.वी.) की कल्पना भी की जा चुकी थी। अंतरिक्ष टेक्नोलॉजी से होनेवाले असीमित सामाजिक-आर्थिक फायदों को स्वीकार करते हुए प्रो. साराभाई ने सन् 1969 में पूरी ऊर्जा और लगन के साथ देश में ही उपग्रह बनाने तथा उन्हें छोड़ने के लिए स्वदेशी तकनीक विकसित करने की क्षमता स्थापित करने का फैसला किया। एस.एल.वी. यानी उपग्रह प्रक्षेपण यानों एवं बड़े रॉकेटों को छोड़े जाने के लिए संभावित प्रक्षेपण केंद्र की स्थापना के उद्देश्य से उन्होंने खुद पूर्वी तटीय क्षेत्र का हवाई दौरा किया था।

प्रो. साराभाई का ध्यान पूर्वी तटीय क्षेत्र पर इसलिए केंद्रित था, ताकि पृथ्वी के पश्चिम से पूर्व की ओर घूर्णन का प्रक्षेपण यान को भरपूर फायदा मिल सके। अंत में उन्होंने मद्रास (अब चेन्नई) से सौ किलोमीटर उत्तर में स्थित श्रीहरिकोटा को प्रक्षेपण स्थल के लिए चुना। और फिर वहीं रॉकेट प्रक्षेपण केंद्र की स्थापना की गई। तटीय रेखा के साथ-साथ अर्द्धचंद्राकार आकृति के इस द्वीप की अधिकतम चौड़ाई आठ किलोमीटर है। क्षेत्रफल के हिसाब से यह द्वीप मद्रास शहर जितना बड़ा है। इसकी पश्चिमी सीमा पर बकिंघम नहर एवं पुलिकट झील है।

सन् 1968 में हमने इंडियन रॉकेट सोसायटी का गठन किया। इसके तत्काल बाद ही भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान समिति का भारतीय राष्ट्रीय विज्ञान अकादमी (आई.एन.एस.ए.) के तहत एक सलाहकार संस्था के रूप में पुनर्गठन किया गया और परमाणु ऊर्जा विभाग के तहत भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन (इसरो) का गठन किया गया। इस संस्था का मुख्य काम देश में अंतरिक्ष विज्ञान के क्षेत्र में शोध करना तय पाया।

भारतीय एस.एल.वी. के सपने को साकार करने के लिए प्रो. साराभाई ने तब तक चुनिंदा लोगों की टीम पहले ही बना ली थी। मुझे इस परियोजना का नेतृत्व करने के लिए चुना गया था, इसलिए मैं अपने को बहुत ही सौभाग्यशाली

मान रहा था। प्रो. साराभाई ने भी मुझे एस.एल.वी. के चौथे चरण का डिजाइन तैयार करने की अतिरिक्त जिम्मेदारी भी सौंपी। बाकी तीन चरणों के डिजाइन तैयार करने का काम डॉ. वी.आर. गवरीकर, एम.आर. कुरुप तथा ए.ई. मुथुनायगम को सौंपा गया था।

प्रो. साराभाई को आखिर ऐसा क्या लगा कि उन्होंने हम कुछ लोगों को ही इस बड़े मिशन के लिए चुना? इसकी एक वजह हमारी व्यावसायिक पृष्ठभूमि हो सकती है। सम्मिश्रित ईंधन (कंपोजिट प्रोपेलेंट्स) के क्षेत्र में डॉ. गवरीकर ने अद्वितीय काम किया था। एम.आर. कुरुप ने ईंधन, प्रणोदन एवं उत्ताप संबंधी तकनीक के लिए उत्कृष्ट प्रयोगशाला की स्थापना की थी। मुथुनायगम ने उच्च ऊर्जावाले ईंधनों के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण काम करके अपने को योग्य साबित किया था। चौथा चरण एक संयुक्त ढाँचा (कंपोजिट स्ट्रक्चर) तैयार करने का था और इसकी निर्माण तकनीक में कई नए काम किए जाने थे, शायद इसीलिए मुझे इसमें लाया गया।

चौथे चरण के काम की नींव मैंने तर्कसंगत अनुभवों के आधार पर निडरता के साथ रखी। पूर्णता की कीमत को मैंने हमेशा निषेधात्मक माना है और यह भी सीखा है कि गलतियाँ सीखने की प्रक्रिया का ही एक हिस्सा हैं। एक-दूसरे की कोशिशों पर सतर्कतापूर्ण नजर के माध्यम से मैं अपनी टीम के सदस्यों से हमेशा कुछ सीखने का समर्थक रहा हूँ, चाहे वे सफल हों या असफल।

मेरे समूह में हर छोटे कदम पर काम की प्रगति देखी जाती थी। यद्यपि मैं चौथे चरण में काम कर रहे अपने सभी सहकर्मियों को जरूरी सूचनाएँ, जानकारियाँ उपलब्ध कराता रहता था, फिर भी मुझे लगता था कि मैं पर्याप्त समय न देकर पूर्ण रूप से मददगार नहीं बन पा रहा हूँ—और न ही मदद का स्रोत बन रहा हूँ। अगर मेरे द्वारा नियत किसी काम में कोई गलती हो जाती तो मुझे आश्चर्य होता। ऐसे में प्रो. साराभाई हमारे केंद्र में एक फ्रांसीसी व्यक्ति को समस्या हल करने के लिए मेरे पास लेकर आए। यह भद्र पुरुष प्रो. कुरियन थे, जो फ्रांस के सेंटर नेशनल दे एतुदेस स्पातियालेस (सी.एन.ई.एस.) के अध्यक्ष थे। उस समय वे डायमाँट लॉन्च व्हीकल विकसित कर रहे थे। प्रो. कुरियन पूर्णरूप से पेशेवर थे। प्रो. साराभाई एवं प्रो. कुरियन ने मुझे एक लक्ष्य निर्धारित करने में मदद की। उन्होंने मुझे चर्चा के दौरान असफलता की संभावनाओं के बारे में भी सावधान किया। प्रो. कुरियन के साथ हुए विचार-विमर्श के बाद जब मुझे चौथे चरण की समस्याओं के बारे में और पता चला, तभी प्रो. साराभाई ने भी बीच में दखल दिया। इससे खुद प्रो.

कुरियन डायामाँट कार्यक्रम में की पुनर्व्याख्या के लिए प्रेरित हुए।

प्रो. कुरियन ने प्रो. साराभाई को उन सभी छोटे कार्यों से मुझे हटा लेने की सलाह दी, जो कम चुनौतीपूर्ण थे। इसकी जगह मुझे उपलब्धियाँ हासिल करने के और ज्यादा अवसर दिए जाने की बात कही। वे हमारी सुनियोजित कोशिशों से इतने ज्यादा प्रभावित थे कि उन्होंने पूछ लिया कि क्या हम डायामाँट के चौथे चरण को तैयार कर सकते हैं। मुझे याद आता है कि उस वक्त प्रो. साराभाई के चेहरे पर मुसकराहट आ गई थी।

दरअसल असलियत तो यह थी कि डायामाँट एवं एस.एल.वी. के विमान ढाँचों में कोई समानता ही नहीं थी। दोनों के व्यास बिलकुल अलग-अलग थे। इनमें काफी ज्यादा परिवर्तन किए जाने की जरूरत थी। मैं असमंजस में था कि मुझे कहाँ से काम शुरू करना चाहिए। मैंने खुद अपने साथियों के बीच इसका हल निकालने का फैसला किया। मैंने इसपर भी गौर किया कि क्या मेरे साथियों के रोजमर्रा के काम से यह जाहिर हो रहा है कि वे अनवरत प्रयोग के लिए इच्छुक हैं या नहीं। मैंने उस हर व्यक्ति से बात करना शुरू किया जिसने इस काम में मदद देने के लिए हलका सा भी वायदा किया था। मेरे कुछ साथियों ने मुझे मेरे भोलेपन या निष्कपटता के बारे में सावधान भी किया। मैंने व्यक्तिगत सुझावों की रोजाना टिप्पणियाँ तैयार करने और उन हस्तलिखित टिप्पणियों को डिजाइन एवं निर्माण के काम में लगे साथियों को देने का नियम बना लिया था। मैं साथियों से पाँच या दस दिन में किसी ठोस नतीजे पर पहुँचने का अनुरोध भी करता।

यह तरीका आश्चर्यजनक रूप से सफल हुआ। हमारे काम की प्रगति की समीक्षा करते हुए प्रो. कुरियन ने इस बात को प्रभावित किया कि जो उपलब्धि हमने एक साल में हासिल कर ली, यूरोप ने वही उपलब्धि तीन साल में भी बड़ी मुश्किल से हासिल की थी। उनके अनुसार, हमारा सकारात्मक पक्ष यह था कि हममें से हरेक ने अपने से पद में नीचे एवं ऊपर आनेवाले व्यक्ति के साथ मिलकर काम किया। मैं हफ्ते में कम-से-कम एक बार अपनी टीम के साथ जरूर मिलता था। हालाँकि इसमें काफी समय एवं ऊर्जा लग जाती थी, लेकिन मैं इसे जरूरी समझता था।

एक अच्छा नेता कितना अच्छा होता है? अपने लोगों से कभी भी बेहतर नहीं तथा परियोजना में पूरी टीम के साथ वचनबद्धता में बराबर का भागीदार; न कम, न ज्यादा। तथ्य यह है कि विकास में थोड़ी सी भी जो उपलब्धि होती—नतीजे, अनुभव, सफलता और जो मेरी पूरी ऊर्जा व समय उसमें लगता, उसमें मैं

अपने सभी साथियों को भागीदार बनाता। एक टीम में प्रतिबद्धता और आपसी समझ एवं विश्वास बनाए रखने की यह बहुत ही मामूली कीमत थी। मैंने खुद अपने छोटे से समूह में नेता देखे और यह जाना कि नेता हर स्तर पर होता है। प्रबंधन का यह एक महत्त्वपूर्ण पक्ष था, जो मैंने सीखा।

हमने एस.एल.वी. के चौथे चरण के मौजूदा डिजाइन में डायमाँट हवाई ढाँचे के अनुरूप सुधार कर लिया था। इसे और उन्नत बनाकर तीन सौ पचास किलोग्राम की बजाय छह सौ किलोग्राम का बनाया गया था और इसका व्यास चार सौ से बढ़ाकर छह सौ मिलीमीटर कर दिया गया था। लगभग दो साल के समर्पित प्रयासों के बाद जब हम इसे सी.एन.ई.एस. को देने वाले थे, फ्रांस ने अचानक अपना डायमाँट बी.सी. कार्यक्रम रद्द कर दिया। उन्होंने हमसे कह दिया कि उन्हें हमारे चौथे चरण की अब और जरूरत नहीं है। यह मेरे लिए एक बहुत बड़ा धक्का था और इससे मैं ठीक उसी तरह बहुत ही हताश हुआ, जब देहरादून में वायुसेना में चयन नहीं हो पाने पर और बंगलौर में ए.डी.ई. में नंदी परियोजना रद्द कर दिए जाने पर हताश हुआ था।

एस.एल.वी. चौथे चरण की इस परियोजना में मेरी बड़ी उम्मीदें एवं कोशिशें लगी थीं, जिससे कि यह डायमाँट रॉकेट के साथ उड़ पाती। एस.एल.वी. के बाकी तीन चरणों में अभी विशेष रूप से रॉकेट प्रोपल्शन के क्षेत्र में काफी ज्यादा काम होना बाकी था, जिसमें कम-से-कम पाँच साल और लगने थे। हालाँकि डायमाँट प्रकरण से हुई हताशा से उबरने और इसे भूलने में मुझे बहुत समय नहीं लगा। फिर भी मुझे इस परियोजना पर काम करते हुए बहुत ही आनंद आया। इसी बीच डायमाँट से मेरे भीतर जो शून्य पैदा हो गया था, उसे राटो ने भर दिया।

जब राटो परियोजना पर काम चल रहा था तब एस.एल.वी. परियोजना धीरे-धीरे आकार लेने लगी थी। अब थुंबा में एक प्रक्षेपण यान की सभी बड़ी प्रणालियाँ तैयार करने की क्षमता स्थापित हो चुकी थी। अपने विशिष्ट प्रयासों से वसंत गवरीकर, एम.आर. कुरुप एवं मुथुनायगम ने टी.ई.आर.एल.एस. का रॉकेट विज्ञान के क्षेत्र में एक विशिष्ट स्थान बना दिया था।

टीम बनाने की कला में प्रो. साराभाई एक विलक्षण उदाहरण थे। एक बार उन्हें एक ऐसे व्यक्ति को चुनना था जिसे एस.एल.वी. के लिए दूर नियंत्रण प्रणाली विकसित करने का काम सौंपा जा सके। इस काम को बखूबी पूरा करने के लिए दो सक्षम लोग थे—एक तो थे बहुत ही अनुभवी एवं विवेकशील यू.आर. राव और दूसरे थे—अज्ञात प्रयोगकर्ता जी. माधवन नायर। यद्यपि मैं जी. माधवन नायर के

समर्पण एवं योग्यताओं से काफी प्रभावित था, लेकिन मैं समझ नहीं पाया कि इतना अच्छा मौका उसे क्यों नहीं मिल पाया। प्रो. साराभाई की एक यात्रा के दौरान माधवन नायर ने अपनी उन्नत एवं विश्वसनीय दूर नियंत्रण प्रणाली का प्रदर्शन करके दिखाया था। प्रो. साराभाई ने माधवन नायर को शामिल करने के फैसले में कोई समय नहीं लगाया। माधवन नायर न सिर्फ प्रो. साराभाई की उम्मीदों पर खरे उतरे बल्कि उससे भी कहीं आगे निकलकर दिखाया। बाद में वे पोलर सैटेलाइट लॉन्च व्हीकल (पी.एस.एल.वी.) परियोजना के निदेशक बने।

एस.एल.वी. और मिसाइलों को हम रिश्ते के भाई-बहन कह सकते हैं। अवधारणा एवं उद्देश्य में ये एक-दूसरे से बिलकुल भिन्न हैं; लेकिन दोनों के उद्भव एवं विकास का मूल एक ही है—रॉकेट विज्ञान। डी.आर.डी.ओ. ने हैदराबाद स्थित डिफेंस रिसर्च एंड डेवलपमेंट लेबोरेटरी (डी.आर.डी.एल.) में एक व्यापक मिसाइल विकास परियोजना पर काम शुरू किया था। इसमें जमीन से हवा में मार करनेवाली मिसाइल के विकास पर जैसे-जैसे काम बढ़ता गया वैसे-वैसे मिसाइल पैनल की होनेवाली बैठकें भी और ज्यादा होने लगीं तथा इस प्रकार मेरे और ग्रुप कैप्टन नारायणन के बीच निकटता भी बढ़ती चली गई।

सन् 1968 में प्रो. साराभाई थुंबा के अपने दौरे पर आए। उनको नोज-कॉन जेटिसनिंग मैकेनिज्म (रॉकेट के अग्रभाग को शेष ढाँचे से नियंत्रित विस्फोट करके अलग करने की प्रणाली) का संचालन करके दिखाया जाना था। हमेशा की तरह हम सब अपने काम के नतीजों को प्रो. साराभाई के साथ बाँटने के लिए उत्सुक थे। हमने प्रो. साराभाई से अनुरोध किया कि वह औपचारिक रूप से इस तापीय प्रणाली को टाइमर के माध्यम से शुरू करें। प्रो. साराभाई मुसकराए और बटन दबा दिया। लेकिन प्रणाली शुरू नहीं हुई। हम सब अवाक् रह गए। मैंने प्रमोद काले की तरफ देखा, जिसने टाइमर सर्किट को डिजाइन किया था और संचालन के लिए लगाया था। हम सारे लोग इस असफलता के कारणों का विश्लेषण करने में लग गए। हमने प्रो. साराभाई से कुछ मिनट प्रतीक्षा करने का अनुरोध किया। और तब हमने टाइमर युक्ति को हटा दिया तथा तापीय प्रणाली को सीधे ही सर्किट से जोड़ दिया। प्रो. साराभाई ने दोबारा बटन दबाया और तापीय प्रणाली शुरू हो गई। प्रो. साराभाई ने काले एवं मुझे बधाई दी; लेकिन उनके हाव-भाव से लग रहा था कि वह कुछ और सोच रहे हैं। हम अंदाज नहीं लगा पाए कि उनके दिमाग में क्या घूम रहा था। लेकिन असमंजस की यह स्थिति बहुत लंबे समय तक नहीं रही। प्रो. साराभाई के सचिव ने मुझे फोन कर रात के खाने के बाद महत्त्वपूर्ण बातचीत के

लिए उनसे मिल लेने को कहा।

प्रो. साराभाई कोवलम पैलेस होटल में ठहरे हुए थे। वह जब भी त्रिवेंद्रम में होते, प्रायः यही उनका घर होता था। इस तरह बुलाए जाने से मैं थोड़ा घबराया हुआ सा था। प्रो. साराभाई ने मुझे गर्मजोशी के साथ बधाई दी। उन्होंने रॉकेट लांचिंग स्टेशन, वहाँ की सुविधाओं जैसे—लॉञ्च पैड, ब्लॉक हाउस, राडार, टेलीमीटरी और दूसरी चीजों के बारे में बात की। उसके बाद वह उस घटना पर आए जो उस दिन सुबह घटित हुई थी। यह ठीक वही थी जिसका मुझे डर था। प्रो. साराभाई ने यह निष्कर्ष नहीं निकाला था कि टाइमर में जो गड़बड़ी आ गई वह हमारे अपर्याप्त ज्ञान या कार्यकुशलता में कमी का नतीजा थी या निर्देशन को लेकर लोगों में आपसी समझ नहीं बन पाई थी, बल्कि इसके बजाय उन्होंने मुझसे पूछा कि क्या हम ऐसा काम करने में अनुत्साहित होते हैं, जिसमें कोई चुनौती नहीं हो। उन्होंने मुझसे यह देखने को भी कहा कि कहीं मेरे काम में संभवतया कोई ऐसी समस्या तो नहीं आ रही, जिसके बारे में मुझे अभी तक मालूम नहीं है। अंत में वह मुख्य विषय पर आए—'हमारे पास रॉकेट प्रणालियों तथा रॉकेट के विभिन्न चरणों को एक जगह व्यवस्थित करने के लिए कोई तंत्र नहीं है। विद्युत् एवं यांत्रिकी के क्षेत्र से संबंधित महत्त्वपूर्ण कार्य तो रहे हैं, लेकिन समय और काल के संदर्भ में ये दोनों एक-दूसरे से भिन्न हैं।' इसके बाद प्रो. साराभाई ने हमारे कार्यों को पुनर्मापित किया और सुबह ही रॉकेट इंजीनियरिंग सेक्शन बनाने का फैसला लिया गया।

गलतियों की वजह से देरी हो सकती है या व्यक्ति अथवा संस्थान को अपने लक्ष्य हासिल कर पाने में बाधाएँ आ सकती हैं; लेकिन प्रो. साराभाई का मानना था कि गलतियाँ ही हमें अपने को सुधारने का अवसर प्रदान करती हैं और हमारे भीतर नए-नए विचार जन्म लेते हैं। यहाँ उनका संकेत टाइमर सर्किट में आई गड़बड़ी को लेकर नहीं था और कम-से-कम इस बारे में तो उन्होंने हममें से किसीको भी दोषी नहीं ठहराया। गलतियाँ, भूल-चूक के मामले में प्रो. साराभाई हमेशा यह मानते थे कि इन्हें टाला नहीं जा सकता; लेकिन हाँ, इनपर नियंत्रण किया जा सकता है, सुधारा जा सकता है। अनुभवों से बाद में मैंने महसूस किया कि गलतियों को रोकने का सबसे अच्छा तरीका यही है कि उनके बारे में पहले से ही अनुमान लगा लिया जाए। लेकिन टाइमर की गड़बड़ी ने ही आश्चर्यजनक ढंग से नियति बदल दी और इसीके कारण रॉकेट इंजीनियरिंग लेबोरेटरी का जन्म हुआ।

मिसाइल पैनल की हर बैठक के बाद मैं इसकी पूरी जानकारी प्रो. साराभाई को दिया करता था। 30 दिसंबर, 1971 को दिल्ली में एक ऐसी ही बैठक में भाग

लेकर मैं त्रिवेंद्रम लौट रहा था। एस.एल.वी. डिजाइन की समीक्षा करने के लिए प्रो. साराभाई उस दिन थुंबा का दौरा कर रहे थे। मैंने उन्हें दिल्ली हवाई अड्डे से ही टेलीफोन किया और मिसाइल पैनल की बैठक की खास-खास बातों के बारे में बताया। उन्होंने मुझे निर्देश दिया कि दिल्ली से लौटते वक्त मैं त्रिवेंद्रम हवाई अड्डे पर ही उनका इंतजार करूँ; क्योंकि उस रात ही प्रो. साराभाई को बंबई जाना था।

जब मैं त्रिवेंद्रम हवाई अड्डे पर उतरा, वातावरण में एक उदासी-सी फैली हुई थी। हवाई जहाज की सीढ़ी चलानेवाले ऑपरेटर कुट्टी ने भर्राई आवाज में मुझे बताया कि प्रो. साराभाई नहीं रहे। कुछ घंटे पहले ही दिल का दौरा पड़ने से उनका निधन हो गया। मुझे यह सुनकर गहरा सदमा लगा। हमारी बातचीत होने से घंटे भर के भीतर ही यह सबकुछ हो गया था। यह मेरे लिए जितना बड़ा आघात था उतना ही बड़ा नुकसान भारतीय विज्ञान के लिए था। सारी रात प्रो. साराभाई के शव को अंतिम संस्कार के लिए विमान से अहमदाबाद ले जाने की तैयारियों में बीत गई।

पाँच साल तक, सन् 1966 से 1971 के बीच करीब बाईस वैज्ञानिकों एवं इंजीनियरों ने प्रो. साराभाई के साथ बहुत ही निकट रहकर काम किया था। इनमें से सभी ने बाद में महत्त्वपूर्ण वैज्ञानिक परियोजनाओं की जिम्मेदारी सँभाल ली थी। प्रो. साराभाई न सिर्फ एक महान् वैज्ञानिक थे बल्कि एक महान् नेतृत्व देनेवाले भी थे। मुझे अभी तक याद है, उन्होंने जून 1970 में एस.एल.वी.-3 की डिजाइन परियोजना की द्विमासिक प्रगति की जो समीक्षा की थी उसमें समीक्षा के लिए डिजाइन प्रदर्शित करने के चार चरण तैयार किए गए थे। पहले तीन प्रदर्शन तो आसानी से हो गए थे, चौथे चरण का प्रदर्शन मुझे करना था। मैंने उनसे अपनी टीम के उन पाँच सदस्यों का परिचय करवाया, जिन्होंने इस डिजाइन को तैयार करने में अपना योगदान दिया था। हरेक को आश्चर्य हुआ, टीम के हर सदस्य ने अपने हिस्से के काम का पूरे अधिकार एवं क्षमता के साथ प्रदर्शन करके बताया। बाद में इस प्रदर्शन पर लंबी चर्चा हुई और निष्कर्ष आया कि प्रगति संतोषजनक है।

अचानक प्रो. साराभाई के साथ काम रहे एक वरिष्ठ वैज्ञानिक ने मुझसे पलटकर पूछा, 'ठीक है, आपकी परियोजना के काम का प्रदर्शन आपकी टीम के सदस्यों ने अपने काम के आधार पर किया है; लेकिन इस परियोजना के लिए आपने क्या किया है?' यह पहला मौका था जब मैंने प्रो. साराभाई को नाराज होते देखा। उन्होंने अपने उस साथी वैज्ञानिक से कहा, 'आपको मालूम होना चाहिए कि परियोजना का प्रबंधन क्या होता है। हमने यह एक श्रेष्ठतम उदाहरण देखा है।

टीम के काम का यह अनूठा प्रदर्शन था। मैंने हमेशा परियोजना को नेतृत्व देनेवाले जिस व्यक्ति को देखा है और जिसने शुद्ध रूप से यह काम किया है, वह कलाम ही है।' मैं प्रो. साराभाई को भारतीय विज्ञान के महात्मा गांधी के रूप में देखता हूँ, जिन्होंने अपनी टीम के लोगों में नेतृत्व के गुण पैदा किए और उन्हें विचारों तथा उदाहरणों के माध्यम से हमेशा प्रेरित किया।

प्रो. एम.जी.के. मेनन के कुछ दिनों अंतरिम रूप से कामकाज चलाने के बाद प्रो. सतीश धवन को इसरो का नेतृत्व करने की जिम्मेदारी सौंपी गई। थुंबा परिसर में स्थित सभी संस्थानों—टी.ई.आर.एल.एस., द स्पेस साइंस एंड टेक्नोलॉजी सेंटर (एस.एस.टी.सी.), द रॉकेट प्रोपेलेंट प्लांट (आर.पी.पी.), द रॉकेट फैब्रीकेशन फैसिलिटी (आर.एफ.एफ.) और द प्रोपेलेंट फ्यूल कॉम्प्लेक्स (पी.एफ.सी.) को मिलाकर एक संपूर्ण अंतरिक्ष केंद्र बनाया गया और इसे विक्रम साराभाई स्पेस सेंटर (वी.एस.एस.सी.) नाम दिया गया। मशहूर धातु विज्ञानी डॉ. ब्रह्मप्रकाश वी.एस.एस.सी. के पहले निदेशक बने।

राटो प्रणाली का पहला सफल परीक्षण 8 अक्तूबर, 1972 को उत्तर प्रदेश में बरेली एयरफोर्स स्टेशन पर किया गया। इसका परीक्षण सुखोई-16 विमान पर किया गया था, जो एक हजार दो सौ मीटर बाद ही उड़ान भर गया था। जबकि यह विमान प्राय: दो किलोमीटर बाद उड़ान भरता था। इस परीक्षण में हमने छासठवीं राटो मोटर इस्तेमाल की थी। यह प्रदर्शन एयर मार्शल शिवदेव सिंह और रक्षामंत्री के वैज्ञानिक सलाहकार डॉ. बी.डी. नाग ने देखा था। कहा जाता है कि इस सफल प्रयास से देश की चार करोड़ रुपए की विदेशी मुद्रा के रूप में बचत हुई। इस प्रकार एक उद्योगपति वैज्ञानिक का सपना अंतत: फलीभूत हुआ था।

भारत में अंतरिक्ष अनुसंधान को शुरू करने की जिम्मेदारी लेने तथा भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान समिति का अध्यक्ष बनने से पहले प्रो. साराभाई ने कई सफल औद्योगिक प्रतिष्ठानों की स्थापना की थी। वे इस तथ्य से भलीभाँति परिचित थे कि बिना उद्योगों के वैज्ञानिक शोध का कोई अर्थ नहीं रह जाता। प्रो. साराभाई ने साराभाई केमिकल्स, साराभाई ग्लास, साराभाई गायगी लिमिटेड, साराभाई मर्क लिमिटेड और साराभाई इंजीनियरिंग ग्रुप जैसे बड़े प्रतिष्ठान स्थापित किए। तिलहन से तेल निकालने के क्षेत्र में उनकी स्वास्तिक ऑयल मिल्स ने उल्लेखनीय काम किया है। साथ ही सिंथेटिक डिटरजेंट और सौंदर्य प्रसाधन सामान बनाने की यह कंपनी अग्रणी रही है। बड़े पैमाने पर पेनिसिलीन बनाने के लिए उन्होंने स्तरीय मानकोंवाली दवा कंपनी शुरू की और उसे आगे बढ़ाया। अब राटो के स्वदेशीकरण

के उनके मिशन ने सैनिक सामान एवं उपकरणों के निर्माण के क्षेत्र में स्वदेशी भावना विकसित कर देश को एक नई दिशा दी थी, जिससे विदेशी मुद्रा के रूप में करोड़ों रुपए की बचत हुई। जिस दिन राटो प्रणाली का सफल परीक्षण हुआ उस दिन मुझे यह सब याद आ रहा था। परीक्षण के खर्चों को मिलाकर भी इस पूरी परियोजना पर पच्चीस लाख रुपए से भी कम का खर्च आया था। भारतीय राटो मोटर की उत्पादन लागत सत्रह हजार रुपए प्रति मोटर आई थी; जबकि एक आयातित राटो मोटर की कीमत तैंतीस हजार रुपए बैठती थी।

विक्रम साराभाई स्पेस सेंटर में एस.एल.वी. परियोजना पर पूरे जोर-शोर से काम चल रहा था। सारी उपप्रणालियाँ विकसित कर ली गई थीं। तकनीकियों को समझकर उनका प्रयोग किया गया था। प्रक्रियाएँ स्थापित हो चुकी थीं। कार्यकेंद्र चुन लिये गए थे तथा कार्यक्रम तैयार किए जा चुके थे। समस्या सिर्फ इतनी बड़ी परियोजना के प्रबंध तंत्र को प्रभावशाली ढंग से चलाने में आ रही थी। बड़ी संख्या में केंद्र थे और सबका अपना-अपना काम एवं प्रबंधन था। ऐसे में इस बड़ी परियोजना में सभी का तालमेल कैसे बैठाया जाए, यही एकमात्र उलझन थी।

डॉ. ब्रह्मप्रकाश के साथ विचार-विमर्श के बाद प्रो. धवन ने मुझे इस काम के लिए चुना। मैं एस.एल.वी. का परियोजना प्रबंधक नियुक्त किया गया। मेरा पहला काम एक परियोजना प्रबंधन योजना तैयार करना था। मैं आश्चर्यचकित था कि जब गवरीकर, मुथुनायगम, कुरुप जैसे लोग मौजूद हैं तब भी मुझे ही इस काम के लिए क्यों चुना गया? जब ईश्वरदास, अर्वामुदन और एस.सी. गुप्ता जैसे दिग्गज प्रबंधक संस्थान में उपलब्ध हैं तो मैं कैसे अच्छा काम कर सकूँगा? मैंने अपनी शंकाओं के बारे में साफ-साफ डॉ. ब्रह्मप्रकाश से इस बारे में बात की। उन्होंने मुझसे कहा कि यह मत देखो कि दूसरों की तुलना में तुम्हारे भीतर कितनी क्षमता है, बल्कि इसकी बजाय अपनी योग्यताएँ बढ़ाने की कोशिश करो।

डॉ. ब्रह्मप्रकाश ने मुझे इस बात का ध्यान रखने का सुझाव दिया कि काम में कहीं कोई कमी न रहे और इस बात के लिए चेताया कि मैं इस परियोजना में लगे दूसरे केंद्रों के पूरी तरह बेहतर ढंग से काम कराऊँ। 'प्रत्येक व्यक्ति एस.एल.वी. से संबंधित अपना-अपना सृजन करेगा। तुम्हारी समस्या पूरी एस.एल.वी. परियोजना को पूरा करने में इसरो पर निर्भर रहने को लेकर हो रही है। एस.एल.वी. मिशन बड़ी संख्या में लोगों की भागीदारी से ही पूरा हो पाएगा। तुम्हें सहनशीलता एवं धैर्य रखना होगा।' उन्होंने कहा। इससे मुझे वह याद आ गया जो मेरे पिताजी सही व गलत में फर्क करने के लिए मुझे 'कुरान' से पढ़कर सुनाया करते थे—'हमने

तुम्हारे सामने कोई ईश्वर का शिष्य नहीं भेजा है, जो खाता नहीं है या बाजार के चौराहे तक नहीं जाता है। हम एक-दूसरे के माध्यम से तुम्हारी परीक्षा लेते हैं। क्या तुम धैर्य नहीं रखोगे ?'

ऐसी स्थितियों में आनेवाले विरोधाभासों के बारे में मैं अनजान नहीं था। टीम का नेतृत्व करनेवाले लोगों में इन दो में से एक बात जरूर पाई जाती है—कुछ लोगों के लिए कार्य ही सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण प्रयोजन होता है और कुछ लोगों के लिए उनके साथ काम करनेवाले ही हितपोषक होते हैं। कुछ लोग ऐसे होते हैं जो या तो इन दोनों स्थितियों के बीच फँसे होते हैं या फिर इससे बाहर हो जाते हैं। मेरा काम ऐसे लोगों से बचाव करना या कहें, उन्हें टालना था, जो न तो काम में रुचि ले रहे थे, न काम करनेवाले लोगों में। मुझे लोगों को ऐसी स्थिति से बचाना था और ऐसा माहौल एवं परिस्थितियाँ तैयार करनी थीं जिसमें कार्य और कार्यकर्ता दोनों साथ-साथ रहें। मैंने अपनी टीम को एक समूह के रूप में तैयार किया, जिसमें हर सदस्य अपने काम एवं अनुभव से दूसरे को समृद्ध करता और इस तरह सब लोग खुशी-खुशी मिलकर काम करते।

एस.एल.वी. परियोजना के प्राथमिक कार्यों में मानक एस.एल.वी.-3 प्रणाली का डिजाइन तैयार करने, विकास करने तथा उसके संचालन करने का काम था। ताकि इससे चालीस किलोग्राम भार के उपग्रह को चार सौ किलोमीटर की वृत्ताकार कक्षा में स्थापित करने का विशेष मिशन पूरा किया जा सके।

पहले कदम के रूप में मैंने परियोजना के प्राथमिक लक्ष्यों को बड़े कार्यों में परिवर्तित किया। ऐसा ही एक बड़ा काम यान के चार चरणों के लिए रॉकेट मोटर प्रणाली विकसित करने का था। इस काम के पूरा होने में जो गंभीर समस्याएँ आ रही थीं वह 8.6 टन वजन की एक रॉकेट मोटर प्रणाली तैयार करने की थी। दूसरा काम यान के नियंत्रण एवं मार्गदर्शन को लेकर था। इसमें पहले, दूसरे और तीसरे चरण के लिए तीन तरह की नियंत्रण प्रणालियाँ शामिल थीं—एयरोडायनामिक सरफेस कंट्रोल (वायुगतिकीय भू-नियंत्रण), थ्रस्ट वेक्टर कंट्रोल और रिएक्शन कंट्रोल। चौथे चरण के लिए स्पिन अप मैकेनिज्म (स्पिन अप प्रक्रिया) थी। फिर भी दूसरा बड़ा काम श्रीहरिकोटा में यान प्रक्षेपण सुविधाएँ विकसित करने का था। मार्च 1973 में सभी उड़ान परीक्षण चौंसठ महीने के भीतर पूरा करने का लक्ष्य तय किया गया।

मैंने नए नीतिगत फैसलों, स्वीकृत प्रबंधन योजना एवं परियोजना रिपोर्ट के दायरे में परियोजना शुरू करने की जिम्मेदारी सँभाल ली। साथ ही परियोजना के

बजट को भी ध्यान में रखा और उन अधिकारों को भी हाथ में लिया जो संस्थान के निदेशक डॉ. ब्रह्मप्रकाश ने मुझे दिए थे। डॉ. ब्रह्मप्रकाश ने चार परियोजना सलाहकार समितियाँ बना दी थीं। इन समितियों का काम कुछ विशिष्ट क्षेत्रों जैसे—रॉकेट, मोटर सामान व निर्माण, नियंत्रण व मार्गदर्शन, इलेक्ट्रॉनिक व प्रक्षेपण आदि में मुझे सलाह देने का था। विलक्षण वैज्ञानिकों—डी.एस. राणे, मुथुनायगम, टी.एस. प्रह्लाद, ए.आर. आचार्य, एस.सी. गुप्ता और सी.एल. अंबा राव के मार्गदर्शन को लेकर मैं पूरी तरह आश्वस्त था।

परियोजना का काम शुरू करने के लिए हमने तीन समूह बनाए। पहला—कार्यक्रम प्रबंधन समूह, दूसरा—एकीकरण एवं उड़ान परीक्षण समूह और तीसरा—उपप्रणालियाँ विकसित करने के लिए समूह। पहले समूह को एस.एल.वी.-3 से संबंधित सारे प्रशासनिक मामले देखने की जिम्मेदारी सौंपी गई। परियोजना प्रबंधन में प्रशासन, योजना एवं मूल्यांकन, उपप्रणालियों का विनिर्देशन, सामान, निर्माण, गुणवत्ता निर्धारण और नियंत्रण भी शामिल था। एकीकरण एवं उड़ान परीक्षण समूह को एस.एल.वी.-3 के एकीकरण और उड़ान परीक्षण के लिए जरूरी सुविधाएँ विकसित करने का काम दिया गया था। साथ ही इस समूह से यान की यांत्रिकीय और वायुगतिकीय समस्याओं सहित यान के बारे में एक विश्लेषण भी तैयार करने को कहा गया था। तीसरे, यानी उपप्रणालियाँ विकसित करनेवाले समूह को वी.एस.एस.सी. के विभिन्न डिवीजनों के बीच तालमेल स्थापित करने की जिम्मेदारी दी गई। साथ ही विभिन्न उपप्रणालियों के विकास में आनेवाली तकनीकी दिक्कतों को इन डिवीजनों में उपलब्ध प्रतिभावान् लोगों की मदद से दूर करने का भी काम इस समूह को दिया गया था।

एस.एल.वी.-3 परियोजना के लिए मैंने दो सौ पचहत्तर इंजीनियरों और वैज्ञानिकों की जरूरत बताई थी। लेकिन इसमें से मुझे सिर्फ पचास ही मिल पाए। अगर मैंने इतनी ज्यादा कोशिशें नहीं की होतीं तो परियोजना शुरू नहीं हो पाती। कुछ नौजवान इंजीनियरों जैसे—एम.एस.आर. देव, माधवन नायर, एस. श्रीनिवासन, यू.एस. सिंह, सुंदरराजन, अब्दुल मजीद, वेद प्रकाश संडलास, नंबूदरि, शशि कुमार एवं शिवाथानु पिल्लै ने काम को तेजी से और दक्षतापूर्वक करने के लिए खुद ही अपने बुनियादी नियम बनाए तथा व्यक्तिगत स्तर पर और टीम के स्तर पर अनूठे परिणाम दिए। ये लोग अपनी सफलता का जश्न एक साथ ही मनाते थे—आपस में एक-दूसरे की तारीफ करके। इससे एक अच्छी नैतिकता विकसित हुई, जिससे सदमों से उबरने में मदद मिलती और घंटों के तनाव भरे काम के बाद व्यक्ति

पुनः ऊर्जावान बनता।

एस.एल.वी.-3 परियोजना टीम का हर सदस्य अपने क्षेत्र में विशेषज्ञ था। इसलिए यह स्वाभाविक ही था कि हर सदस्य अपनी आजादी की कीमत को भी समझता था। इसलिए ऐसे विशेषज्ञों के काम के प्रबंधन में टीम के नेता को बहुत ही संतुलित होकर चलना पड़ता था। सदस्यों के काम में नियमित रूप से सक्रिय रुचि बनाए रखना जरूरी था और दूसरी ओर सदस्यों में विश्वास बनाए रखने की भी जिम्मेदारी थी तथा वे अपनी भूमिका निभा सकें, इसके लिए उनकी स्वायत्तता की आवश्यकता को भी पूरा करना था। अगर टीम का नेता नियमित रूप से काम में सक्रिय रुचि बनाए रखे तो वह दखल देने जैसा लगता है। अगर स्वायत्तता देने की अवधारणा पर चले तो इससे आभास होता है कि वह जिम्मेदारियों से भाग रहा है या फिर रुचि नहीं ले रहा है। आज एस.एल.वी.-3 की टीम के सदस्य देश के सर्वाधिक प्रतिष्ठित वैज्ञानिक कार्यक्रमों का नेतृत्व कर रहे हैं। एम.एस.आर. देव ए.एस.एल.वी. परियोजना के प्रमुख बने, माधवन नायर पी.एस.एल.वी. परियोजना के मुखिया हैं और संडलास एवं शिवथानु पिल्लै डी.आर.डी.ओ. मुख्यालय में मुख्य नियंत्रक हैं। इनमें से हर व्यक्ति अपने कठोर परिश्रम और दृढ़ इच्छाशक्ति से ही शीर्ष पर पहुँच पाया है। वास्तव में यह एक विलक्षण टीम थी।

□

: सात :

एस.एल.वी.-3 परियोजना के नेतृत्व की जिम्मेदारी सँभालते हुए मुझे कई जरूरी एवं परस्पर विरोधी माँगों का सामना करना पड़ा; जैसे—कमेटी के काम से संबंधित, सामान-उपकरणों के प्रबंध, पत्र-व्यवहार, समीक्षाएँ, ब्रीफिंग तथा विभिन्न विषयों पर सूचनाएँ उपलब्ध कराने की जरूरत।

मेरे दिन की शुरुआत करीब दो किलोमीटर के प्रातःकालीन भ्रमण से होती। सुबह घूमने के दौरान ही मैं दिन भर का कार्यक्रम बना लिया करता था। मेरा जोर इसपर रहता था कि दिन भर में दो या तीन काम निश्चित रूप से पूरे कर लिये जाएँ और इसमें कम-से-कम एक काम ऐसा होता, जो लंबी अवधि के लक्ष्यों से संबंधित होता था। दफ्तर में एक बार मैं अपनी टेबल जरूर साफ करता था। पहले दस मिनट के भीतर मैं सभी कागजात देखकर उनको अलग-अलग कर लेता—वे कागज जिनपर तुरंत कार्यवाही करनी है, प्राथमिकता की दृष्टि से कम महत्त्वपूर्ण कागज, ऐसे कागज जिनका काम अधूरा पड़ा है और पढ़ने की सामग्री अलग। इसके बाद मैं सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कागजों को अपने सामने रखता और दूसरी चीजों को अलग किनारे रख देता।

एस.एल.वी.-3 के डिजाइन के दौरान करीब दो सौ पचास उप-भाग और चालीस बड़ी उपप्रणालियाँ तैयार की गई थीं। सामान की सूची में दस लाख से ज्यादा छोटे-बड़े कल-पुरजे शामिल थे। सात से दस साल की अवधिवाले इस जटिल कार्यक्रम को सुचारु रूप से संचालित करने के लिए एक परियोजना कार्यान्वयन रणनीति बनानी जरूरी हो गई थी। अपनी तरफ से प्रो. सतीश धवन एक बयान जारी करके स्पष्ट रूप से यह कह चुके थे कि वी.एस.एस.सी. और श्रीहरिकोटा में काम करनेवाले लोगों और पैसे का नियंत्रण हमारे हाथ में रहेगा। अपनी ओर से हमने ऐसी प्रबंध व्यवस्था अपनाई थी कि उसमें तीन सौ से ज्यादा कंपनियों के उत्पाद लिये जाने थे। इसके पीछे उद्देश्य यह था कि हमारी परियोजना की वजह

से इन कंपनियों की तकनीक में और विकास हो। मैंने अपने साथियों के सामने तीन बातों पर ज्यादा जोर दिया था—डिजाइन क्षमता का महत्त्व, लक्ष्य निर्धारण तथा उसकी उपलब्धि और झटकों को बरदाश्त करने की क्षमता पैदा करना। मैं अब एस.एल.वी.-3 परियोजना प्रबंधन के श्रेष्ठ पक्षों पर विस्तार से कुछ कहूँ, उससे पहले मैं एस.एल.वी.-3 के बारे में बताना चाहता हूँ।

प्रक्षेपण यान का वर्णन मानवाकार में करना दिलचस्प होगा। यान का जो मुख्य यांत्रिकीय ढाँचा है, इसकी कल्पना मानव शरीर के रूप में कर सकते हैं। यान का जो हिस्सा नियंत्रण एवं मार्गदर्शन संबंधी प्रणालियों को संचालित करता है, उसकी कल्पना मानव के मस्तिष्क के रूप में की जाती है। यान का यह मस्तिष्क इलेक्ट्रॉनिक प्रणालियों से युक्त होता है। इसी प्रकार उसकी भुजाएँ प्रणोदन के रूप में होती हैं। कैसे बनाए जाते हैं ये? इनको बनाने में कौन-कौन सा सामान आवश्यक होता है और कौन-कौन सी तकनीकें इस्तेमाल की जाती हैं?

प्रक्षेपण यान के निर्माण में धात्विक एवं अधात्विक दोनों प्रकार के पदार्थ काम में लाए जाते हैं। इसमें सम्मिश्र पदार्थ और सिरामिक भी शामिल हैं। धातुओं में विभिन्न प्रकार का स्टेनलैस स्टील तथा अल्युमिनियम, मैग्नीशियम, टाइटेनियम, कॉपर, बेरिलियम, टंगस्टन व मोलिब्डेनम के अयस्क काम में लाए जाते हैं। सम्मिश्र पदार्थ दो या दो से अधिक मिश्रणों अथवा संयोजन का ऐसा संघटित रूप होते हैं जो अपने रूप एवं पदार्थ संरचना में एक-दूसरे से भिन्न होते हैं तथा एक-दूसरे में घुलनशील नहीं होते। कुछ पदार्थ धात्विक, कार्बनिक या अकार्बनिक हो सकते हैं; जबकि कुछ पदार्थों की संरचना असीमित होती है। प्रक्षेपण यान के निर्माण में सबसे जटिल सम्मिश्र संरचनात्मक अवयवों से बने होते हैं। प्लास्टिक के सम्मिश्रों को मजबूती प्रदान करने के लिए हमने कई किस्मों के ग्लास फाइबर (काँच के तंतु) इस्तेमाल किए और पॉलीमाइड्स एवं कार्बन यौगिकों के प्रयोग के लिए रास्ता खोला। सिरामिक पारदर्शी माइक्रोवेव में विशिष्ट तरीके से मिट्टी से तैयार किए पदार्थ होते हैं। हमने सिरामिक के इस्तेमाल पर विचार किया था; लेकिन तब तकनीकी सीमाएँ होने की वजह से इसे अस्वीकार कर दिया गया था।

यांत्रिकी विधियों के जरिए ये पदार्थ हार्डवेयर में तब्दील किए जाते हैं। दरअसल इंजीनियरिंग की जितनी भी शाखाएँ हैं, जिनका रॉकेट विज्ञान में सीधा प्रयोग होता है, उनमें मैकेनिकल इंजीनियरिंग सबसे ज्यादा महत्त्वपूर्ण है। यह एक परिष्कृत प्रणाली होने, जैसे तरल इंजन हो या हार्डवेयर का कोई हिस्सा हो, से इसके निर्माण में मैकेनिकल इंजीनियरों और उत्कृष्ट मशीनों की जरूरत होती है।

हमने भी कुछ महत्त्वपूर्ण तकनीकियाँ जैसे—निम्न अयस्कवाले स्टेनलैस स्टील के लिए वेल्डिंग टेक्नोलॉजी, विद्युत् चिनगारी (स्पार्क) से धातु की कटाई (मशीनिंग) और अति सूक्ष्म पुरजों की बनवाई (फैब्रीकेशन) के लिए नई स्वदेशी तकनीकें विकसित करने का फैसला किया। अपने यहाँ ही हमने कुछ और जरूरी मशीनें बनाने का भी फैसला किया था, जैसे—दो सौ चौवन लीटर क्षमता का ऊर्ध्वाधर सम्मिश्रक। हमारी कई उपप्रणालियाँ इतनी व्यापक एवं जटिल थीं कि इनके लिए काफी पैसे की जरूरत थी। बिना किसी हिचकिचाहट के हमने निजी क्षेत्र के उद्योगों से बातचीत की और ठेके पर आधारित प्रबंधन योजनाएँ शुरू कीं, जो आगे चलकर विज्ञान एवं टेक्नोलॉजी के क्षेत्र में व्यवसाय करनेवाले संगठनों के लिए एक रूपरेखा के रूप में स्थापित हुईं।

अब हम एस.एल.वी. के जीवन की बात पर आते हैं। एस.एल.वी. में एक जटिल विद्युतीय परिपथ प्रणाली स्थापित की जाती है, जो इसके यांत्रिकी ढाँचे को गति के लिए शक्ति प्रदान करती है। इस प्रकार मशीनों एवं उपकरणों को सामान्य रूप से बिजली सप्लाई होती है। यह ठीक इसी प्रकार है जैसे वैमानिकी शोध में निर्देशन एवं नियंत्रण प्रणालियों को सामूहिक रूप से रखा जाता है। वैमानिकी प्रणालियों में डिजिटल इलेक्ट्रॉनिक्स, माइक्रोवेव राडार, राडार ट्रांसपोंडर, जड़त्वीय घटकों एवं प्रणालियों से संबंधित विकास की कोशिशें वी.एस.एस.सी. में पहले से ही चल रही थीं। एस.एल.वी. की इस स्थिति के बारे में जानना बहुत ही महत्त्वपूर्ण है, जब यह उड़ान की स्थिति में होता है। दबाव, प्रणोदन, स्पंदन, त्वरण आदि भौतिक अवस्थाओं के माप के लिए विभिन्न किस्मों के ट्रांसड्यूसरों के विकास का काम एस.एल.वी. पर काम के दौरान ही शुरू हुआ। ट्रांसड्यूसर यान के इन भौतिक मापों को विद्युतीय संकेतों में परिवर्तित कर देते हैं। इसके बाद यान पर लगी दूरमापीय प्रणाली इन संकेतों को ग्रहण करके इन्हें रेडियो तरंगों के रूप में पृथ्वी पर स्थित केंद्रों को भेज देती है। यहाँ ये संकेत प्राप्त किए जाते हैं और इनके विश्लेषण के बाद वापस मूल सूचना के रूप में ट्रांसड्यूसरों द्वारा एकत्रित कर लिये जाते हैं। अगर यह प्रणाली डिजाइन के अनुरूप काम करती है तो इसमें चिंता की कोई बड़ी बात नहीं होती। लेकिन यदि इसमें कुछ गड़बड़ी हो जाती है तो ऐसे में यान को रोकने के लिए नष्ट कर देना चाहिए, जिससे कोई बहुत बड़ी अप्रत्याशित गड़बड़ियाँ न हो जाएँ। इसलिए सुरक्षा निश्चित करने के लिए एक विशेष प्रकार की दूर नियंत्रण प्रणाली विकसित की गई, ताकि गड़बड़ी की स्थिति में रॉकेट से नष्ट किया जा सके, एस.एल.वी. की परास (रेंज) और स्थिति का पता लगाने के

लिए इंटरफैरोमीटर प्रणाली विकसित की गई। एस.एल.वी. परियोजना में स्वदेशी अनुक्रमापी (सीक्वेंसर्स) के विकास का भी काम शुरू किया गया। इनका उपयोग प्रज्वलन चरणों को अलग करना, यान से जुड़े कार्यक्रम—जो रॉकेट विज्ञानियों के लिए सूचनाएँ इकट्ठी करते हैं—तथा ऑटो पायलट इलेक्ट्रॉनिक्स प्रणाली, जो वाहन को पूर्व निर्धारित पथ पर संचालित करती है, जैसे कार्यों में होता है।

जब तक पूरी प्रणाली को गति देने के लिए ऊर्जा नहीं दी जाती प्रक्षेपण यान तब तक जमीन पर ही रहता है। यह प्रोपेलेंट (ईंधन) ज्वलनशील पदार्थ के रूप में होता है, जो ऊष्मा पैदा करता है तथा यान को बढ़ाने के लिए रॉकेट इंजन में बल उत्पन्न करता है। यह ऊर्जा के स्रोत तथा ज्वलनशील पदार्थ, दोनों के रूप में काम करता है। रॉकेट इंजनों में प्रोपेलेंट का सामान्य तौर पर जो अर्थ होता है, वह उसे गति देने के लिए इस्तेमाल किए जानेवाले रासायनिक पदार्थों से है।

साधारण तौर पर ईंधनों को दो वर्गों में बाँट सकते हैं—ठोस एवं तरल। हमने ठोस ईंधनों पर ध्यान केंद्रित किया। ठोस ईंधन के मुख्य रूप से तीन घटक होते हैं—ऑक्सीडाइजर, ईंधन और संयोगी पदार्थ। ठोस ईंधनों को भी दो वर्गों में बाँटा जा सकता है—कंपोजिट ईंधन और डबलबेस ईंधन। कंपोजिट ईंधन में ऑक्सीडाइजर या फिर अकार्बनिक पदार्थ जैसे अमोनियम परकोलेट होते हैं और ये कार्बनिक ईंधन जैसे सिंथेटिक रबर की तरह होते हैं। उस समय डबलबेस ईंधनों का सपना काफी दूर था; लेकिन फिर भी हमने इस सपने को साकार कर लिया।

यह सारी आत्मनिर्भरता और स्वदेशी निर्माण का काम धीरे-धीरे ही हुआ। हमारे पास स्वप्रशिक्षित इंजीनियरों की उत्कृष्ट टीम थी। आज मुझे लगता है कि एस.एल.वी. के विकास में हमारी अप्रशिक्षित प्रतिभा, उसकी विशेषताओं एवं समर्पण का मिला-जुला रूप ही ज्यादा महत्त्वपूर्ण पक्ष रहा। समस्याएँ लगातार आती रहीं, लेकिन मेरी टीम के सदस्यों ने कभी मुझे अपनी दस अँगुलियों से ज्यादा समस्याएँ नहीं गिनाईं। देर रात काम खत्म करने के बाद मैंने यह लिखा था—

'सुंदर हैं वे हाथ
सृजन करते जो सुख से
धीरज से
सच से
साहस से
हर क्षण, हर पल
हर दिन, हर युग।'

एस.एल.वी. पर हमारे काम के साथ-साथ ही डी.आर.डी.ओ. में जमीन से हवा में मार करनेवाली स्वदेशी मिसाइल विकसित करने का भी काम चल रहा था। राटो परियोजना बंद कर दी गई थी; क्योंकि जिन विमानों के लिए इसे डिजाइन किया गया था वे पुराने पड़ चुके थे। नए विमान जो आए थे, उनमें राटो की आवश्यकता नहीं थी। परियोजना बंद करने के साथ ही नारायणन को डी.आर.डी.ओ. में मिसाइल निर्माण के लिए टीम का नेतृत्व करने की जिम्मेदारी दी गई। इसरो में हमसे अलग उन्होंने तकनीकी विकास के बजाय एक-एक करके काम पूरा करने के दर्शन को प्राथमिकता दी। रूसी मूल की जमीन से हवा में मार करनेवाली मिसाइल एस.ए.-2 के बारे में पूरी विस्तृत जानकारी हासिल की गई, ताकि संगठन में परीक्षण मिसाइल का डिजाइन तैयार करने के लिए बुनियादी सुविधाएँ जुटाई जा सकें। ऐसा मानना था कि पहले एक-एक करके स्वदेशी तकनीक विकसित की जाए, इसके बाद निर्देशित मिसाइलों के क्षेत्र में अत्याधुनिक टेक्नोलॉजी तो स्वतः आ जाएगी। यह परियोजना सन् 1972 में स्वीकृत हुई और इसे 'डेविल' कोड नाम दिया गया। इस परियोजना के पहले तीन वर्षों के लिए पाँच करोड़ रुपए निर्धारित किए गए। इसमें से आधे से ज्यादा पैसा विदेशी मुद्रा में चला गया।

अब एयर कमोडोर पद पर पदोन्नत कर नारायणन को डी.आर.डी.एल. का निदेशक बना दिया गया था। हैदराबाद के दक्षिण-पूर्वी उपनगर में स्थित इस प्रयोगशाला को उन्होंने इस काम में सक्रिय किया। नारायणन बहुत ही ऊर्जावान व्यक्ति थे, जो हमेशा आगे बढ़ने में रहते थे। उन्होंने अपने आसपास उत्साही लोगों का एक समूह तैयार किया था और कई सेना अधिकारियों को इस महत्त्वपूर्ण प्रयोगशाला में रखा। एस.एल.वी. परियोजना में पूरी तरह लगे होने की वजह से मिसाइल पैनल की बैठकों में मेरी भागीदारी धीरे-धीरे कम होती गई और बाद में तो बैठकों में जाना बंद ही हो गया। हालाँकि नारायणन और उनकी 'डेविल' परियोजना से संबंधित सारी खबरें त्रिवेंद्रम पहुँच जाया करती थीं।

राटो परियोजना में नारायणन के साथ रहने के दौरान मैंने पाया कि वे बहुत ही कठोर परिश्रमी व्यक्ति हैं—पूरी तरह नियंत्रण, अधिकार एवं प्रभुत्व रखनेवाले। मुझे आश्चर्य हुआ करता था कि अगर उन जैसा कोई मैनेजर हो, जिसका उद्देश्य लक्ष्य-प्राप्ति ही हो—चाहे कीमत कुछ भी अदा करनी पड़े—तो आगे चलकर उसे मौन विद्रोह एवं असहयोग का सामना करना पड़ सकता है।

सन् 1975 के नए साल का पहला दिन एक नया अवसर लेकर आया। नारायणन के नेतृत्व में चल रहे काम का मूल्यांकन किया जाना था। इसके लिए

उस समय रक्षामंत्री के वैज्ञानिक सलाहकार प्रो. एम.जी.के. मेनन ने डॉ. ब्रह्मप्रकाश की अध्यक्षता में कमेटी गठित की। कमेटी को 'डेविल' परियोजना पर अब तक हुए काम की समीक्षा करनी थी। इस टीम में मुझे रॉकेट वैज्ञानिक के रूप में शामिल किया गया। मुझे वायुगतिकीय तथा मिसाइल के ढाँचे एवं प्रणोदन (प्रोपल्शन) के क्षेत्र में हुई प्रगति का मूल्यांकन करना था। प्रणोदन से संबंधित पक्षों की समीक्षा के लिए मेरी सहायता कर रहे थे—बी.आर. सोमशेखर और विंग कमांडर पी. कामराजू। मूल्यांकन समिति में शामिल सदस्यों में डॉ. आर.पी. शेनॉय तथा प्रो. आई.जी. शर्मा भी थे, जिन्होंने परियोजना की इलेक्ट्रॉनिक प्रणालियों की समीक्षा की थी।

हम 1-2 जनवरी, 1975 को डी.आर.डी.एल. में मिले। यहाँ हमने इन विभिन्न केंद्रों का दौरा किया, जहाँ परियोजना के विकास कार्य चल रहे थे। हमने परियोजना में कार्यरत वैज्ञानिकों के साथ विचार-विमर्श किया। यहाँ मैं ए.वी. रंगा राव की दृष्टि, विंग कमांडर आर. गोपालास्वामी की गतिशीलता, डॉ. आई. अच्युत राव की संपूर्णता, जी. गणेशन के उत्साह, एस. कृष्णन की वैचारिक स्पष्टता और आर. बालाकृष्णन की आलोचनात्मक दृष्टि से बहुत ही प्रभावित हुआ। असीमित जटिलताओं के बीच भी जे.सी. भट्टाचार्य और लेफ्टिनेंट कर्नल आर. स्वामीनाथन के चेहरे पर स्पष्टता झलक रही थी। लेफ्टिनेंट कर्नल वी.जे. सुंदरम् का उत्साह एवं परिश्रम साफ नजर आ रहा था। इस प्रकार यह एक विलक्षण बुद्धिवाले समर्पित लोगों का ऐसा समूह था जिसमें सेना अधिकारी एवं वैज्ञानिक दोनों थे और सबने अपने आपको खुद ही अपने-अपने क्षेत्रों में प्रशिक्षित किया था, ताकि भारतीय मिसाइल को उड़ाने का मिशन सफल हो सके।

मार्च 1975 के अंत में हमने त्रिवेंद्रम में इसकी समापन बैठक बुलाई। हमारा मानना था कि तरल रॉकेट क्षेत्र को छोड़कर बाकी मिसाइल परियोजना का काम, विशेष रूप से हार्डवेयर निर्माण के क्षेत्र में, प्रगति पर है। तरल रॉकेट के क्षेत्र में कुछ समय की जरूरत और थी। पूरी मूल्यांकन समिति की सर्वसम्मति से यह राय बनी थी कि हार्डवेयर निर्माण और प्रणाली विश्लेषण में डी.आर.डी.एल. ने दोहरी उपलब्धि हासिल की है, खासतौर से ग्राउंड इलेक्ट्रॉनिक्स के डिजाइन एवं विकास में।

हमने देखा कि डिजाइन डाटा के निर्माण में एक के बाद एक प्रतिस्थापना के दर्शन ने श्रेष्ठता स्थापित की। कई डिजाइन इंजीनियर आवश्यक विश्लेषण पर पर्याप्त ध्यान देने में समर्थ नहीं थे, जैसाकि वी.एस.एस.सी. में हमें अनुभव हो गया

था। प्रणाली विश्लेषण अध्ययन (सिस्टम एनालिसिस स्टडीज) इस समय शुरुआती स्तर पर थी। कुल मिलाकर नतीजे उत्कृष्ट थे। लेकिन अभी तो हमें बड़ी मंजिल तय करनी थी। मुझे स्कूल के समय की कविता याद आती है—

'क्यों है चिंतित
सहमा, डरा, उदास, कापुरुष!
अभी कहाँ आया है अवसर,
अभी कहाँ खोया है कुछ भी।'

कमेटी ने सरकार को अपनी सिफारिश भेजी और 'डेविल' परियोजना आगे भी जारी रखने को कहा। हमारी सिफारिश मान ली गई और परियोजना को जारी रखा गया।

वी.एस.एस.सी. में एस.एल.वी. आकार ले रहा था। डी.आर.डी.एल., जहाँ बहुत तेजी से काम चल रहा था, के मुकाबले हम काफी धीरे चल रहे थे। टीम के नेता के अनुसरण के बजाय मेरी टीम का हर सदस्य अपने व्यक्तिगत स्तर पर सफलता की ओर बढ़ रहा था। हमारे काम के तरीके में सबसे ज्यादा जोर आपस में संवाद बनाए रखने पर था, खासकर निर्देशों के मामले में टीमों के बीच और टीम के भीतर। एक तरह से इस अति विशाल परियोजना के प्रबंधन को चलाने में संवाद ही मेरा असली 'मंत्र' था। अपनी टीम के सदस्यों से सर्वश्रेष्ठ नतीजे पाने के लिए मैंने उन्हें बार-बार संगठन के लक्ष्य एवं उद्देश्यों के बारे में बताया और इसपर विशेष रूप से जोर देता कि इन लक्ष्यों को हासिल करने में हर सदस्य के विशेष योगदान का महत्त्व होगा। इसी समय मैंने अपने अधीनस्थ काम कर रहे साथियों के हर रचनात्मक विचार को भी ग्रहण करने की कोशिश की और फिर इन्हें सही रूप में आलोचना के लिए भेजता तथा परियोजना में लागू कराता। उस समय की अपनी डायरी में मैंने कहीं लिखा है—

'चलो सिर उठाकर
पड़े हर क़दम इत्मीनान से।
कहाँ छोड़ते हैं निशान
वक्त की रेत पर
जो पग डगमगाते
लरजते, झिझकते, घिसटते।'

ज्यादातर समय ऐसा होता कि बातचीत (कन्वर्सेशन) और संवाद (कम्युनिकेशन) के बीच भ्रम की स्थिति पैदा हो जाती। दरअसल, दो चीजें बिलकुल

भिन्न हैं। मैं संवाद-पटु नहीं हूँ; लेकिन अपने को एक कुशल संवादक मानता हूँ। हँसी-मजाक या सुखद बातचीत में प्राय: कोई उपयोगी बातचीत अथवा सूचनाएँ नहीं होतीं। यह जानना बहुत ही महत्त्वपूर्ण है कि संवाद दो पक्षों के बीच होनेवाली एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें दोनों पक्ष आपस में एक-दूसरे को विशिष्ट सूचना देते हैं अथवा लेते हैं।

एस.एल.वी. पर काम करने के दौरान मैं अपने साथियों के समक्ष आई समस्याओं को समझने और उनके हल निकालने के लिए जरूरी कदम उठाने के उद्देश्य से तथा आपसी समझ बढ़ाने के लिए संवाद किया करता था। प्रामाणिक संवाद किसी भी परियोजना के प्रबंधन को कुशलता से चलाने के लिए एक महत्त्वपूर्ण औजार के रूप में प्रयोग में लाया जाता है। मैंने यह कैसे किया? मैंने हमेशा तथ्यात्मक जानकारी हासिल करने की कोशिश की और कभी भी सच का मुलम्मा चढ़े गलत तथ्यों पर ध्यान नहीं दिया। एक बार स्पेस साइंस काउंसिल (एस.एस.सी.) की समीक्षा बैठक में—सामान आने में देरी के मामले पर—मैंने वी.एस.एस.सी. के लेखा एवं वित्तीय सलाहकार की उदासीनता और लालफीताशाही के रवैए के खिलाफ अपनी शिकायत उठा दी। मेरा जोर इस बात पर था कि लेखा स्टाफ के काम करने का जो तरीका है उसे बदला जाना चाहिए। मैंने यह भी माँग की कि लेखा विभाग के काम को परियोजना टीम में बाँट दिया जाए। डॉ. ब्रह्मप्रकाश मेरी इस बात से भौंचक रह गए। उन्होंने अपनी सदा सुलगती सिगरेट कुचली और बैठक से उठकर बाहर चले गए।

उस दिन मुझे सारी रात इस बात पर पश्चात्ताप हुआ कि मेरे कठोर शब्दों से डॉ. ब्रह्मप्रकाश को पीड़ा हुई। हालाँकि मैं व्यवस्था में आई जड़ता के खिलाफ लड़ने के लिए प्रतिबद्ध था। मैंने स्वयं से व्यावहारिक प्रश्न पूछा, 'क्या कोई इन असंवेदनशील नौकरशाहों के बीच जीवित रह सकता है?' जवाब था—नहीं। तब मैंने खुद से ही एक निजी प्रश्न पूछा, 'मेरे कठोर शब्दों से डॉ. ब्रह्मप्रकाश को जो आघात लगा क्या वह उससे बढ़कर होगा, जो उन्हें तब लगेगा जब इन नौकरशाहों के चलते एस.एल.वी. परियोजना आगे जाकर दफन हो जाएगी?' मैंने ईश्वर से प्रार्थना की और मदद माँगी। मेरे लिए यह सौभाग्य था, अगले दिन सुबह डॉ. ब्रह्मप्रकाश ने वित्तीय अधिकार परियोजना प्रबंधन को दे दिए।

कोई भी, जो टीम का नेतृत्व करने की जिम्मेदारी सँभालता है, सिर्फ तभी सफल हो सकता है जब उसे पर्याप्त स्वतंत्रता मिले तथा शक्तिशाली एवं असरदार अधिकार दिए जाएँ। यह शायद जीवन में व्यक्तिगत संतुष्टि का रास्ता भी है।

जिम्मेदारी के साथ आजादी के लिए भी व्यक्तिगत खुशहाली का सिर्फ एक ठोस आधार भी यही है। अपनी निजी स्वतंत्रता को बनाए रखने के लिए कोई क्या कर सकता है ? इसके लिए मैं आपको दो तरीके बताता हूँ।

पहला, आप अपनी शिक्षा और कौशल को बढ़ा सकते हैं। ज्ञान एक ऐसी वास्तविक संपत्ति है, जो आपके काम का एक सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण हिस्सा होती है। जितना ज्यादा अद्यतन ज्ञान आपके पास होगा, आप उतने ही स्वतंत्र रहेंगे। ज्ञान को किसीके पास से ले जाया नहीं जा सकता, सिवाय इसके कि यह पुराना पड़ सकता है। कोई भी नेता मुक्त रूप से अपनी टीम का नेतृत्व तभी कर सकता है जब उसे यह सही-सही पता हो कि उसके चारों ओर क्या-क्या हो रहा है। सही ढंग से नेतृत्व करने के लिए शिक्षा से लगातार संबद्ध रहना जरूरी है। एक सफल टीम नेता बनने के लिए जरूरी है कि शोरगुल तथा दिन भर की कामकाजी भीड़-भाड़ के बाद आप रुकें और अगले नए दिन के लिए अपने को तैयार करें।

दूसरा रास्ता व्यक्तिगत जिम्मेदारी के लिए भीतर उमंग पैदा करना है। व्यक्तिगत आजादी का जो सर्वश्रेष्ठ तरीका है, वह उन शक्तियों को पता लगाने में मदद करता है जो तुम्हें ढूँढ़ती हैं। सक्रिय रहो! जिम्मेदारी सँभालो! वह काम करो जिसमें तुम विश्वास करते हो। अगर तुम ऐसा नहीं करते हो तो तुम अपनी किस्मत दूसरों के हवाले कर रहे हो। इतिहासकार एडिथ हैमिल्टन ने प्राचीन यूनान के लिए लिखा है—'जब उन्होंने आजादी चाही, उन्हें जिम्मेदारी से मुक्त कर दिया गया; पर फिर एथेंस की आजादी ही खत्म हो गई और फिर कभी आजाद नहीं हुआ। सच्चाई यह है कि हममें से बहुत से अपनी आजादी बढ़ाने के लिए बड़े समझौते कर लेते हैं। हम उन ताकतों के खिलाफ लड़ सकते हैं जो हमारा दमन करने की धमकी देती हैं। हम अपने उन गुणों एवं परिस्थितियों से अपने को मजबूत कर सकते हैं जो निजी आजादी को बढ़ावा देते हैं। ऐसा करते हुए हम एक ऐसा मजबूत संगठन खड़ा कर सकते हैं जो हमें अप्रत्याशित लक्ष्यों की प्राप्ति में सक्षम बनाए।'

एस.एल.वी. के काम में तेजी आने के साथ ही प्रो. धवन ने प्रगति की समीक्षा करने की नई व्यवस्था शुरू की। इसमें परियोजना में शामिल पूरी टीम को भी लिया जाता। प्रो. धवन एक लक्ष्य लेकर चलनेवाले व्यक्ति थे। वी.एस.एस.सी. में परियोजना समीक्षा संबंधी बैठकों की अध्यक्षता प्रो. धवन ही करते थे और इन बैठकों में वे बड़ी घटनाओं पर ही विचार करते थे। वह इसरो के एक सच्चे कप्तान थे—एक कमांडर, नेवीगेटर, व्यवस्थापक—सारी भूमिकाएँ एक ही में निभाते थे। फिर भी, जितना उन्होंने किया उससे ज्यादा करने का दावा या ढोंग कभी नहीं

किया। बजाय इसके, जब उन्हें कहीं कुछ अस्पष्ट लगता तो वह सवाल पूछ लेते और खुलकर विचार-विमर्श के जरिए शंकाएँ दूर कर लेते। मैं उन्हें एक ऐसे नेता के रूप में याद करता हूँ जिनके लिए किसी टीम का दृढ़ता, लेकिन निष्पक्षता के साथ नेतृत्व करना एक नैतिक अनिवार्यता थी। अगर वह किसी भी मामले पर एक बार कोई फैसला कर लेते थे तो उसपर बिलकुल डटे रहते थे। लेकिन कोई भी फैसला लेने से पहले वह उसे अंतिम रूप देने तक विचार, राय-मशविरे के लिए खुला रखते थे।

प्रो. धवन के साथ मुझे लंबे समय तक समय बिताने का अवसर मिला। वह अपने तर्क एवं बौद्धिकता से सुननेवाले को मोहित कर लेते थे; क्योंकि वह किसी भी विषय पर अपना विश्लेषण प्रस्तुत कर सकते थे। उनके पास डिग्रियों का असाधारण मेल था--गणित एवं भौतिकशास्त्र में बी.एस-सी., अंग्रेजी साहित्य में एम.ए., मैकेनिकल इंजीनियरिंग में बी.ई., वैमानिकी इंजीनियरिंग में एम.एस. तथा वैमानिकी एवं गणित में कैलिफोर्निया इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी से पी-एच.डी.।

उनके साथ बौद्धिक बहसें बहुत ही प्रेरक हुआ करती थीं और उनसे मुझे और मेरी टीम के सदस्यों को दिमागी ऊर्जा मिलती थी। मैंने उन्हें हमेशा आशावाद और सहानुभूति से भरा पाया। यद्यपि वह खुद प्राय: अपने को कठोर समझते थे। अगर किसीसे कोई गलती हो जाती तो उसके प्रति भी वह उदार रहते। प्रो. धवन दोषियों के खिलाफ बहुत ही सख्त रूप में फैसला सुना दिया करते थे; लेकिन उसके बाद ही वह उन्हें माफ भी कर देते थे।

सन् 1975 में इसरो सरकारी संस्था बन गई। विभिन्न केंद्रों के निदेशकों तथा अंतरिक्ष विभाग (डी.ओ.एस.) के वरिष्ठ अफसरों को मिलाकर इसरो परिषद् का गठन किया गया। यह परिषद् सरकारी शक्तियोंवाले अंतरिक्ष विभाग और काम करनेवाले केंद्रों के बीच भागीदारी प्रबंधन के फोरम के रूप में थी। सरकारी विभागों की पारंपरिक शब्दावली में कहें तो इसरो के केंद्र अब अधीनस्थ इकाइयों या संबद्ध दफ्तरों के रूप में आ गए थे। लेकिन ऐसे शब्द न तो कभी इसरो की तरफ से और न ही कभी डी.ओ.एस. की ओर से बोले गए। भागीदारी प्रबंधन, जो प्रशासनिक शक्तियों और उन्हें लागू करनेवाली एजेंसियों के बीच एक सक्रिय पारस्परिक संबंध बनाता है, इसरो प्रबंधन की एक उत्कृष्ट मिसाल है, जो भारत के शोध और विकास संगठनों में लंबे समय तक कायम रहेगी।

इस नई व्यवस्था में मैं टी.एन. शेषन के संपर्क में आया। शेषन उस समय डी.ओ.एस. में संयुक्त सचिव थे। तब तक मैं नौकरशाहों के बारे में रूखा एवं

अव्यक्त संकोची भाव रखा करता था। इसलिए एस.एल.वी.-3 के प्रबंधन बोर्ड की बैठक में जब मैं पहली बार शेषन से मिला तो मुझे बहुत अच्छा नहीं लगा। लेकिन जल्दी ही शेषन के प्रति मेरे मन में आदर का भाव उत्पन्न हुआ। शेषन बैठकों में पूरे एजेंडे के साथ हमेशा पूरी तैयार करके जाते थे। वह अपनी विलक्षण विश्लेषण क्षमता के साथ वैज्ञानिकों के मस्तिष्कों को उत्तेजित कर दिया करते थे।

एस.एल.वी. परियोजना के पहले तीन सालों में विज्ञान के कई रहस्यों का खुलासा हुआ। इनसान होने के नाते अज्ञानता हमेशा हमारे साथ रही है और हमेशा रहेगी भी। मेरे लिए चाहे जो कुछ भी नया होता, मैं उसके बारे में अथाह जानने के लिए जागरूक हो जाता। मैं यह मानकर चला करता था कि विज्ञान का काम हर चीज की व्याख्या करना, उसे समझाना है और प्रांत के लोगों में जानकारी का यह अभाव एक प्रक्रिया है, जो मेरे पिता एवं लक्ष्मण शास्त्री जैसे लोगों में थी। हालाँकि मैं हमेशा इस मामले में अपने वैज्ञानिक साथियों के साथ चर्चा इस डर से नहीं करता था, क्योंकि इससे कहीं उनके विचारों पर कोई असर न पड़े।

धीरे-धीरे मुझे विज्ञान एवं टेक्नोलॉजी के बीच तथा शोध एवं विकास के बीच अंतर मालूम हुआ। विज्ञान अनंत रास्ते और संभावनाएँ खोलता है। विकास एक बंद पथ के समान है और इसमें गलतियाँ होना स्वाभाविक है—और हर रोज होती हैं। लेकिन हर गलती सुधार किया करती है, अच्छा बनाने के लिए। संभवतया सृजक ने इंजीनियरों को वैज्ञानिक से और ज्यादा उपलब्धि हासिल करवाने के लिए बनाया। वैज्ञानिक पूरी तरह शोध करते हैं और हल निकालते हैं। फिर इंजीनियर भी उन्हें एक और रोशनी दिखाते हैं—यानी एक और संभावना। मैं हमेशा अपनी टीम को वैज्ञानिक बनने से सावधान करता रहा हूँ। विज्ञान उम्मीदों एवं संभावनाओं में एक कभी न खत्म होनेवाली यात्रा की तरह है। हमें सीमित समय और सीमित पैसा दिया गया था। एस.एल.वी. का निर्माण हमारे अपने ज्ञान की सीमाओं पर आधारित था। काम में मैंने उन चीजों, तरीकों को वरीयता दी जो सबसे बेहतर विकल्प हो सकते थे। समयबद्ध परियोजना के भीतर कोई नया तरीका नहीं निकाला जा सकता था। मेरी राय में एक परियोजना टीम के नेता को हमेशा उन्हीं प्रामाणिक तकनीकियों के लिए काम करना चाहिए, जो ज्यादा-से-ज्यादा इस्तेमाल हो सकें और प्रयोग करने की कोशिश तभी करनी चाहिए जब बहुसंसाधन उपलब्ध हों। □

: आठ :

एस.एल.वी.-3 परियोजना इस प्रकार तैयार की गई थी कि दो बड़े तकनीकी केंद्रों—वी.एस.एस.सी. और श्रीहरिकोटा रॉकेट लॉन्च स्टेशन—में ईंधन उत्पादन, रॉकेट मोटर परीक्षण और बड़े-से-बड़े व्यासवाले रॉकेट को भी छोड़ने की पूरी-पूरी व्यवस्था हो। एस.एल.वी.-3 परियोजना में भागीदार के नाते हमने अपने लिए तीन मील पत्थर निर्धारित किए थे—सन् 1975 तक साउंडिंग रॉकेटों के माध्यम से सभी उपप्रणालियों के विकास तथा उन्हें उड़ान के योग्य बना लेना, सन् 1976 तक उपकक्षीय उड़ानें तथा सन् 1978 में अंतिम कक्षीय उड़ान। इस समय तक काम में तेजी आ गई थी। काम को लेकर उत्साह का माहौल बन गया था। जहाँ मैं गया, हमारी टीमों ने मुझे कुछ-न-कुछ नया करके बताया। देश में पहली बार कई बड़े और नए काम हो रहे थे। इस तरह के काम में बुनियादी स्तर की तकनीक का प्रयोग पहले कभी नहीं देखा गया था। मेरी टीम के सदस्यों में मुझे अब काम करने के तरीके को लेकर नए-नए आयाम विकसित होते नजर आ रहे थे।

कार्य निष्पादन के आयाम ऐसे महत्त्वपूर्ण पहलू हैं जो सृजन की ओर अग्रसर करते हैं। व्यक्ति के ज्ञान एवं कुशलता की तरह ही ये सक्षमता से कहीं ज्यादा महत्त्व रखते हैं। एक व्यक्ति को क्या आना चाहिए और वह अपने काम को सुचारु रूप से पूरा करने में कितना योग्य है, कार्य निष्पादन के तरीकों का दायरा इनकी तुलना में कहीं ज्यादा बड़ा और गहराई लिये हुए है। इसमें दृष्टिकोण, मूल्य और विशिष्टताएँ शामिल होती हैं। इनसान के व्यक्तित्व में यह कई स्तरों पर विद्यमान है। व्यवहार के स्तर पर हम कुशलता एवं ज्ञान को देख सकते हैं। सामाजिक भूमिका और स्व-छवि जैसे आयाम मध्यम स्तर पर पाए जाते हैं। प्रेरणा एवं विशेषता जैसे गुण अंतरिम अथवा हृदय में होते हैं। यदि हम कार्य निष्पादन के उन आयामों का चयन कर लें जिनका पूरी तरह कार्य की सफलता के साथ संबंध अथवा जुड़ाव हो तो हम विचार एवं कार्य दोनों के स्तर पर कार्य पूरा करने के

सर्वोत्कृष्ट तरीकों का खाका तैयार कर सकते हैं।

यद्यपि एस.एल.वी.-3 पर अभी काम चल रहा था। साथ ही इसकी उपप्रणालियों को तैयार करने का काम भी पूरा होने जा रहा था। जून 1974 में कुछ जटिल प्रणालियों के परीक्षण के लिए हमने सेंटोर साउंडिंग रॉकेट छोड़ा। इसमें एस.एल.वी. की हीटशील्ड, रेट जायरो यूनिट तथा व्हीकल ऐटिच्यूड प्रोग्रामर लगाया गया। तीनों उपप्रणालियों में जो सम्मिश्र पदार्थ, कंट्रोल इंजीनियरिंग और सॉफ्टवेयर प्रयोग में लाए गए थे, उनका देश में पहले कभी इस्तेमाल नहीं किया गया था। परीक्षण पूरी तरह सफल रहा। तब तक भारतीय अंतरिक्ष कार्यक्रम साउंडिंग रॉकेटों से आगे नहीं बढ़ा था और यहाँ तक कि जानकार लोग भी इसकी कोशिशों को देखने-समझने और स्वीकार करने को राजी नहीं थे। पहली बार हमें राष्ट्र के विश्वास से प्रेरणा मिली थी। तत्कालीन प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी ने 24 जुलाई, 1974 को संसद् में कहा, 'प्रासंगिक टेक्नोलॉजी, उपप्रणालियों एवं हार्डवेयर (भारत का पहला उपग्रह प्रक्षेपण यान बनाने के लिए) के विकास तथा निर्माण का काम संतोषजनक प्रगति पर है। बहुत सारे उद्योग उपकरणों और कल-पुरजों के निर्माण में लगे हैं। भारत की पहली कक्षीय उड़ान सन् 1978 में होगी।'

सृजन के किसी भी काम की तरह एस.एल.वी.-3 को तैयार करने का काम भी कष्टसाध्य प्रक्रिया थी। एक दिन जब मेरी टीम और मैं पहले चरण की मोटर के परीक्षण के काम में पूरी तरह तल्लीन थे, तभी रामेश्वरम् से खबर आई कि मेरे बहनोई और मुझे रास्ता दिखानेवाले जनाब अहमद जलालुद्दीन अब इस दुनिया से चले गए थे। यह खबर सुनकर कुछ मिनटों के लिए जैसे मैं थम-सा गया; कुछ सोच भी नहीं पाया, न ही कुछ महसूस कर रहा था। जब मैंने एक बार और काम में ध्यान लगाने की कोशिश की तो मैंने पाया कि मैं अपने आपमें ही कुछ बहकी-बहकी बातें कर रहा हूँ। तब मुझे महसूस हुआ कि जलालुद्दीन के साथ मेरा भी एक हिस्सा चला गया है। जैसे मेरे सामने बचपन की यादें उभर आईं—शाम को रामेश्वरम् मंदिर के आसपास घूमना, चाँदनी रात में चमकती मिट्टी और नृत्य करतीं समुद्री लहरें, अनंत आकाश से टिमटिमाते तारों का प्रकाश, मुझे समुद्र में डूबता क्षितिज दिखाते जलालुद्दीन, मेरी किताबों के लिए उनके द्वारा पैसों का बंदोबस्त करना और सांताक्रुज हवाई अड्डे पर मुझे विदा करने आना। मुझे लगा जैसेकि मैं समय और काल के भँवर में फेंक दिया गया। मेरे पिता, जो अब अपने जीवन के सौ साल से भी ज्यादा पार कर चुके थे तथा जिन्हें अपने से आधी उम्र के अपने ही दामाद का जनाजा उठाना था, मेरी बहन जोहरा की कलपती आत्मा,

जिसके चार साल के बेटे के चले जाने से लगे घाव अभी भरे भी नहीं थे—ये सारे दृश्य आँसुओं से धुँधलाई मेरी आँखों के सामने तैर रहे थे और मुझे खौफनाक महसूस हो रहे थे। मैंने अपने को शांत किया और परियोजना के उप निदेशक डॉ. एस. श्रीनिवासन को अपनी गैरहाजिरी में काम देख लेने के बारे में कुछ निर्देश दिए।

बसें बदलता हुआ रात भर का सफर तय करके अगले दिन सुबह ही मैं रामेश्वरम् पहुँच पाया। इस दौरान मैंने उन सब बातों को भुलाने की भरपूर कोशिश की जो जलालुद्दीन के निधन की खबर के बाद मेरी स्मृति में उभर आई थीं। लेकिन जिस क्षण मैं घर पहुँचा, मौत जैसे मेरे पैरों के नीचे थी। मेरे पास जोहरा एवं अपनी भानजी महबूब को कहने के लिए कुछ भी नहीं था। दोनों का विलाप जारी था। मुझे लग रहा था कि मेरे पास बहाने के लिए आँसू भी नहीं हैं। हमने जलालुद्दीन के शरीर को कब्र में दफनाया।

मेरे पिताजी बहुत देर तक मेरा हाथ थामे रहे। उनकी आँखों में भी आँसू नहीं थे। 'क्या तुम नहीं देखते, अबुल, ईश्वर किस प्रकार अँधेरा कर देता है ? क्या यही उसकी इच्छा थी ? लेकिन उसने रास्ता दिखाने के लिए ही सूरज बनाया है। यही है वह जिसने तुम्हारे लिए रात बनाई और आराम के लिए नींद दी। जलालुद्दीन अब गहरी नींद में सो चुके हैं—एक स्वप्नरहित नींद में; पूरी तरह शांति में, जिसमें साधारण रूप से अचेतन हैं। अल्लाह की नियति के आगे हम कुछ नहीं कर सकते। वही हमारा रखवाला है। मेरे बेटे, अल्लाह में अपना भरोसा रखो।' उन्होंने अपनी झुर्रीदार पलकों को धीरे से बंद किया और ध्यानमग्न हो गए।

मुझे मौत से कभी डर नहीं लगा। आखिरकार एक दिन तो सभी को जाना है। शायद जलालुद्दीन कुछ जल्दी चले गए, बहुत ही जल्दी। मैं खुद ज्यादा समय तक घर पर रुक नहीं सका। मुझे लग रहा था कि मैं एक अजीब सी अशांति एवं चिंता में डूबता जा रहा हूँ और मेरे व्यक्तिगत जीवन तथा पेशेवर जीवन के बीच अंदरूनी विरोधाभास जन्म लेते जा रहे हैं। थुंबा लौटने के कई दिन बाद तक मुझे अपने किए हर काम को लेकर एक ऐसी निरर्थकता का आभास होता रहा, एक वैराग्य जैसा अनुभव, जो पहले कभी नहीं हुआ था।

मैंने प्रो. धवन से विस्तार से बातचीत की। उन्होंने मुझसे कहा कि जैसे-जैसे एस.एल.वी. परियोजना का काम बढ़ता जाएगा, स्वाभाविक रूप से तुम्हारे मन को बड़ी शांति मिलती जाएगी। उन्होंने मुझे फिर से प्रौद्योगिकी की वास्तविकताओं पर और उपलब्धियों पर ध्यान केंद्रित करने के लिए प्रेरित किया।

धीरे-धीरे ड्राइंग बोर्ड से हार्डवेयर तैयार करने का काम होने लगा। शशि कुमार ने निर्माण को लेकर सरकारी एवं निजी कार्यशालाओं का एक बहुत ही बेहतर नेटवर्क तैयार किया था। ड्राइंग मिलने के कुछ दिन के भीतर ही वे बिना विलंब के उपलब्ध क्षमता से निर्माण के काम में लग जाते। नंबूदिरी व पिल्लै ने रॉकेट मोटरों के विकास के लिए प्रोपल्शन लेबोरेटरी में दिन-रात एक कर दिया। यान के यांत्रिक एवं विद्युतीय कार्यों के लिए एम.एस.आर. देव और संडलास ने बहुत ही सावधानी से योजनाएँ तैयार की थीं। माधवन नायर एवं मूर्ति वी.एस.एस.सी. की इलेक्ट्रॉनिक प्रयोगशालाओं द्वारा विकसित की गई प्रणालियों की जाँच करते और फिर आवश्यकता तथा संभावना के अनुसार उन्हें उड़ान प्रणालियों में प्रयोग करते। यू.एस. सिंह ने पहली प्रक्षेपण भू-प्रणाली का विकास किया, जिसमें दूर मापीय, दूर नियंत्रण तथा राडार सुविधाओं की प्रणालियाँ युक्त थीं। उन्होंने उड़ान परीक्षणों के लिए श्रीहरिकोटा रॉकेट प्रक्षेपण केंद्र के साथ मिलकर एक विस्तृत कार्य योजना भी बनाई थी। डॉ. सुंदरराजन इस पूरे मिशन की प्रणालियों को अद्यतन करने में जुटे रहे। इस परियोजना के उप निदेशक और एक सक्षम तथा सुयोग्य लॉन्च व्हीकल डिजाइनर डॉ. श्रीनिवासन ने मेरे सभी बचे हुए काम पूरे कर दिए थे। जिस काम पर मैं ध्यान नहीं दे पाता, या जो बात मेरे सुनने से रह जाती, वे उसपर ध्यान दे लेते और सुझाव देकर ऐसी संभावनाएँ बना देते जिनकी मैं कल्पना भी नहीं कर पाता।

काफी कठोर परिश्रम के बाद हमने यह जाना कि परियोजना प्रबंधन की सबसे बड़ी समस्या विभिन्न व्यक्तियों एवं केंद्रों के बीच नियमित और दक्ष तालमेल बनाने की है। बिना समुचित सामंजस्य के हमारे कठोर परिश्रम का कोई मतलब नहीं रह जाएगा।

इसरो मुख्यालय में वाई.एस. राजन का साथ मेरे लिए बहुत ही सौभाग्यपूर्ण था। राजन हमेशा एक अच्छे मित्र थे और हैं। खरादियों, मिस्त्रियों, बिजली का काम करनेवालों एवं ड्राइवरों के साथ उनका काफी दोस्ताना संबंध था। दूसरी ओर वैज्ञानिकों, इंजीनियरों, ठेकेदारों तथा नौकरशाहों से भी उनकी गहरी दोस्ती थी। आज जब मीडिया मुझे 'बैल्डर ऑफ पीपुल' कहता है तो मुझे राजन के साथ के अपने अनुभव याद आ जाते हैं। एस.एल.वी. परियोजना के मामले में विभिन्न केंद्रों में काम करनेवाले लोगों से उनके मधुर एवं आत्मीय संबंध बन गए थे।

सन् 1976 में मेरे पिताजी का इंतकाल हुआ। काफी ज्यादा उम्र होने के कारण उनका शरीर दुर्बल हो चला था और इसी कारण वे कुछ दिन से बीमार भी

थे। जलालुद्दीन के निधन के बाद से उनका स्वास्थ्य और भी गिर गया था। उनमें अब जीने की इच्छा भी नहीं रह गई थी। जलालुद्दीन को अपनी दैविक शक्ति के पास लौटता देख उनकी भी इच्छा अल्लाह के पास जाने की होने लगी थी।

जब भी मुझे पिताजी की तबीयत खराब होने के बारे में पता लगता तो मैं शहर के एक अच्छे डॉक्टर को लेकर रामेश्वरम् चला जाता। जब-जब मैं ऐसा करता तब पिताजी अनावश्यक चिंता करने के लिए मुझपर नाराज होते और डॉक्टर पर किए जानेवाले खर्च को लेकर भी मुझे सुना देते। वह कहा करते—'मेरे ठीक होने के लिए तुम्हारा आ जाना ही पर्याप्त है। तुम डॉक्टर को लाकर उसकी फीस पर पैसा क्यों खच करते हो?' इस समय तक उनका स्वास्थ्य इतना गिर चुका था कि डॉक्टर, देखभाल या पैसे से भी कुछ नहीं हो सकता था। मेरे पिताजी जैनुलाबदीन रामेश्वरम् की भूमि पर एक सौ दो वर्ष तक रहे। वह अपने पीछे पंद्रह पोते-पोती, एक परपोता छोड़ गए थे। कितना आदर्शवाला एवं अनुकरणीय जीवन था उनका! मेरे पिताजी हर ईमानदार-वफादार व्यक्ति के लिए एक आदर्श प्रतिमान व्यक्ति के रूप में जिए। जिस दिन उनको दफनाया गया उस दिन रात को अकेले बैठे हुए मुझे अंग्रेज कवि कीट्स की मृत्यु पर उनके मित्र औदेन द्वारा लिखी एक कविता याद आई। मुझे लगा कि यह मेरे पिताजी के लिए ही लिखी गई है—

'धरा ने पाया अपना अतिथि
पिता में मेरे देखो आज।
काटते जीवन भर की जेल
लपेटे रिश्तों की रस्सियाँ
खोलता रहा कैदियों बीच
खुदाई की नेहमत के राज।'

शब्दों में कहें तो यह एक और बुजुर्ग की मौत थी। न कोई सार्वजनिक शोक सभा आयोजित की गई, न ही कोई झंडा झुकाया गया, न ही किसी अखबार में उनके निधन की खबर छपी। वह कोई राजनेता नहीं थे, कोई अध्येता या कोई बड़े व्यवसायी भी नहीं थे। वह तो एक ऐसे साधारण एवं पारदर्शी व्यक्ति थे जैसे ईश्वर ने उन्हें बनाया हुआ होगा। मेरे पिताजी हमेशा विश्वासपूर्वक ईश्वर का अनुसरण करते रहे; सिर्फ इसलिए नहीं कि इसके अलावा उनके पास अपने को संकटमुक्त बनाने के लिए कोई रास्ता नहीं था, बल्कि इसलिए कि उन्हें ईश्वर के बताए रास्ते पर चलना था। उनका जीवन एक ऐसी प्रक्रिया थी जिसमें बुराई एवं पाशविकता भी नहीं रह पाती थीं और सभी को भद्र व फरिश्ता बनने के लिए प्रेरणा मिलती

थी। मृत्यु के बाद भी वही मरा जो उनके भीतर सबसे खराब रहा होगा, जिसे मरना भी चाहिए। उनके भीतर जो सबसे अच्छा था, उसे लेकर वह स्वर्ग में ही गए।

पिताजी मुझे हमेशा अबूबेन आदम की एक पौराणिक कथा सुनाया करते थे। एक रात अबू एक सपना देखकर जाग जाता है। सपने में वह देखता है कि एक फरिश्ता सोने की किताब में उन लोगों के नाम लिख रहा है जो ईश्वर से प्यार करते हैं। अबू उस फरिश्ते से पूछता है कि क्या खुद उसका नाम भी इस सूची में है। इसपर फरिश्ता नकारात्मक उत्तर देता है। तब निराश मगर खुशी से अबू कहता है—'मेरा नाम उनमें लिख दो जो उसके अनुयायियों से प्रेम करते हैं।' फरिश्ते ने नाम लिख दिया और वह गायब हो गया। अगली रात फिर फरिश्ता आया और उन लोगों के नाम दिखाए जिन्हें ईश्वर के प्रेम से आशीर्वाद मिला था। इसमें अबू का नाम सबसे ऊपर था।

मैं अपनी माँ के पास बहुत देर तक बैठा रहा, लेकिन कुछ बोल नहीं पाया। जब मैं थुंबा लौटने के लिए उनसे विदा लेने लगा, उन्होंने भर्राई हुई आवाज में मेरे लिए दुआ की और आशीर्वाद दिया। उन्हें यह मालूम था कि उन्हें अपने पति का वह घर छोड़ना नहीं था और मैं उनके साथ वहाँ रह नहीं सकता था। हम दोनों को अपनी-अपनी जगह ही रहना था। यही नियति थी, यही प्रारब्ध था।

एस.एल.वी.-3 एपोजी रॉकेट के ऊपरी हिस्से का विकास डायमाँट की तरह ही तैयार किया गया था। इसका उड़ान परीक्षण फ्रांस में होना था। इसमें कई जटिल समस्याएँ आ गई थीं। इन समस्याओं को दूर करने के लिए मुझे तत्काल फ्रांस जाना था। दोपहर बाद फ्रांस के लिए मैं रवाना होता, उससे पहले ही मुझे खबर मिली कि मेरी माँ का निधन हो गया है। नागरकोइल जाने के लिए मुझे सबसे पहले जो बस मिल सकती थी, पकड़ी। वहाँ से रात भर ट्रेन का सफर करके मैं अगले दिन सुबह रामेश्वरम् पहुँचा। वे दोनों आत्माएँ, जिन्होंने मुझे स्वरूप देने के लिए आकार लिया था, मुक्त हो चुकी थीं। उनकी यात्रा के अंत का समय आ चुका था। हममें से बाकी को यह सफर जारी रखना था और जीवन का खेल पूरा होने देना था। मैंने उस मसजिद में प्रार्थना की जिसमें मेरे पिताजी मुझे हर शाम एक बार जरूर ले जाया करते थे। मैंने कहा, मेरी माँ अब अपने पति की देखरेख एवं प्यार के बिना इस दुनिया में और ज्यादा नहीं रह पाईं। और इसलिए अब उन्होंने अपने पति के पास ही चले जाना बेहतर समझा। मैंने उससे (ईश्वर) क्षमा माँगी। 'जो जिम्मेदारी मैंने उन्हें दी और जैसा जीवन मैंने उनके लिए तैयार किया था, उसे उन्होंने बड़ी सावधानी, समर्पण एवं ईमानदारी के साथ पूरा किया और वापस मेरे

पास आए। तुम उनका काम पूरा होने के दिन शोक क्यों मना रहे हो? उस काम पर ध्यान केंद्रित करो जो तुम्हारे लिए पड़ा है। अपने कार्यों से परमानंद को प्राप्त करो।' ये शब्द किसीने कहे नहीं थे, लेकिन मैंने जोर से व स्पष्ट आवाज में सुना था यह। मैं बहुत ही शांति के साथ मसजिद से बाहर आया और बिना अपने घर की तरफ देखे रेलवे स्टेशन की ओर चल पड़ा। मुझे हमेशा यह बात याद आती है कि जब भी नमाज पढ़ने का वक्त होता, हमारा घर एक छोटी सी मसजिद में तब्दील हो जाता था। मेरे पिताजी एवं माँ के साथ घर के सारे लोग और बच्चे नमाज अता करते।

अगली सुबह मैं थुंबा लौट आया था—बहुत थका हुआ और भावनात्मक रूप से बहुत टूटा हुआ, लेकिन अपने महत्त्वाकांक्षी कार्य, यानी भारतीय रॉकेट के एक भाग को विदेशी भूमि से उड़ाने के प्रति पूरी तरह प्रतिबद्ध।

एस.एल.वी.-3 एपोजी रॉकेट के सफल परीक्षण के बाद फ्रांस से लौटने पर एक दिन डॉ. ब्रह्मप्रकाश ने मुझे वर्नहर फॉन ब्रॉन के पहुँचने के बारे में सूचना दी। रॉकेट विज्ञान के क्षेत्र में काम करनेवाला हर व्यक्ति फॉन ब्रॉन के बारे में जानता है, जिन्होंने वी-2 मिसाइलें तैयार की थीं और द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान लंदन पर इन मिसाइलों से हमला कर तबाही मचाई थी। युद्ध के अंतिम दौर में फॉन ब्रॉन को मित्र देशों की सेना ने बंदी बना लिया था। इसके बाद उनके काम को देखते हुए उन्हें नासा में रॉकेट कार्यक्रम में बड़ी जिम्मेदारी सौंपी गई। अमेरिकी सेना के लिए काम करते हुए फॉन ब्रॉन ने जुपिटर मिसाइल बनाई, जो पहली आई.आर.बी.एम. (इंटरमीडिएट रेंज बैलेस्टिक मिसाइल) थी और इसकी क्षमता तीन हजार किलोमीटर तक मार करने की थी। जब डॉ. ब्रह्मप्रकाश ने मुझसे फॉन ब्रॉन का मद्रास (अब चेन्नई) में स्वागत करने और मद्रास से उन्हें थुंबा लाने को कहा तो स्वाभाविक था, मैं रोमांचित हो उठा।

तब तक वी-2 मिसाइल रॉकेट एवं मिसाइल के इतिहास में उस समय तक की सबसे बड़ी उपलब्धि थी। यह फॉन ब्रॉन और उनकी टीम के सदस्यों की कड़ी मेहनत का प्रतिफल था। इस मिसाइल को ब्रॉन की टीम ने सन् 1920 में वी.एफ.आर. (सोसाइटी फॉर स्पेस फ्लाइट) में तैयार किया था। नागरिक कोशिशों से जो शुरू हुआ था, जल्दी ही वह एक सरकारी सेना के रूप में सामने आया और फॉन ब्रॉन को जर्मन मिसाइल प्रयोगशाला का निदेशक बना दिया गया। जून 1942 में पहली वी-2 मिसाइल का परीक्षण किया गया, जो असफल रहा। परीक्षण स्थल के एक ओर गिरकर ही इसमें विस्फोट हो गया। लेकिन 16 अगस्त, 1942 को अंततः

ध्वनि की रफ्तार से भी तेज गति की मिसाइल बन ही गई। जर्मनी के नार्दोसेन के पास एक भूमिगत उत्पादन इकाई में अप्रैल से अक्तूबर 1944 के दौरान ब्रॉन की देखरेख में ही दस हजार से ज्यादा वी-2 मिसाइलों का उत्पादन किया गया। मैं एक ऐसे व्यक्ति के साथ यात्रा करूँगा जो एक वैज्ञानिक, एक डिजाइनर, एक प्रोडक्शन इंजीनियर, एक प्रशासक, एक तकनीकी प्रबंधक—यानी एक में ही सबकुछ है, सोचकर मैं रोमांचित था।

मद्रास से त्रिवेंद्रम हम एवरो एयरक्राफ्ट में गए। इस यात्रा में करीब नब्बे मिनट का समय लगा। फॉन ब्रॉन ने मुझसे हमारे काम के बारे में पूछा और इस तरह सुना जैसे वे कोई रॉकेट विज्ञान के छात्र हों। मुझे कभी भी यह उम्मीद नहीं थी कि आधुनिक रॉकेट विज्ञान के जन्मदाता इतने विनम्र, ग्रहणशील एवं प्रोत्साहन देनेवाले होंगे। पूरी उड़ान के दौरान मुझे उनका साथ बहुत ही अच्छा महसूस हुआ। यह कल्पना कर पाना कठिन था कि मैं मिसाइलों के इतने बड़े ज्ञाता से बात कर रहा हूँ, क्योंकि वह एक अनात्मशंसी व्यक्ति थे। उनके पूछने पर मैंने बताया कि एस.एल.वी. की लंबाई व व्यास का अनुपात यानी एल./डी. बाईस रखा गया है। इसपर उन्होंने मुझे सावधान किया और कहा कि इससे एयरो इलैस्टिक संबंधी समस्याएँ खड़ी हो सकती हैं, जिन्हें उड़ान के दौरान टाला जाना बहुत जरूरी है। ऐसे होते हैं विवेकशील ज्ञानी!

'अपने कार्य जीवन का एक बड़ा हिस्सा जर्मनी में बिताने के बाद अब आप अमेरिका में कैसा महसूस करते हैं?' यह सवाल मैंने ब्रॉन से पूछा, जो अपोलो मिशन में 'शनि' रॉकेट तैयार करने के बाद अमेरिका में एक पूजनीय हस्ती बन गए थे। अपोलो मिशन के इस रॉकेट ने ही मनुष्य को चाँद पर उतारा था। 'अमेरिका एक विशाल संभावनाओंवाला देश है; लेकिन वे हर चीज पर गैर अमेरिकीपन-संदेह एवं अपमान की दृष्टि से देखते हैं। वे बहुत ही गहराई तक एन.आई.एच. (नॉट इनवेंटेड-हियर) मनोविकार से ग्रस्त हैं और वे विदेशी तकनीकियों को बहुत ही तुच्छ समझते हैं। अगर तुम रॉकेट विज्ञान में कुछ भी करना चाहते हो, इसे अपने आप ही करो।' ब्रॉन ने मुझे सलाह दी। उन्होंने टिप्पणी करते हुए कहा, 'एस.एल.वी.-3 एक विशुद्ध भारतीय डिजाइन है और आपके सामने अपनी समस्याएँ ही आ सकती हैं। लेकिन तुम्हें यह हमेशा याद रखना चाहिए कि हम सिर्फ सफलताओं से ही नहीं बनते हैं, हमारा निर्माण असफलताओं से भी होता है।'

रॉकेट के विकास में आवश्यक कठोर परिश्रम और उसके लिए प्रतिबद्धता के विषय पर बातचीत में ब्रॉन मुसकराए और बोले, 'रॉकेट विज्ञान में कठोर

परिश्रम ही पर्याप्त नहीं है। यह कोई खेल नहीं है, जिसमें थोड़ी सी मेहनत से ही तुम्हें सम्मान मिल सकता है। यहाँ न सिर्फ तुम्हें लक्ष्य को पाना है बल्कि इसे जितना जल्दी संभव हो सके, हासिल करने के तरीके भी निकालने हैं।

'संपूर्ण प्रतिबद्धता का अर्थ केवल कड़ी मेहनत नहीं है। इसमें पूर्णरूप से शामिल होने का पक्ष बहुत महत्त्वपूर्ण है। चट्टान की दीवार खड़ी करना एक कमरतोड़ मेहनत का काम है। कुछ लोग ऐसे होते हैं जो सारी जिंदगी चट्टान की दीवारें खड़ी करते हैं और जब वे मर जाते हैं, मीलों लंबी दीवार होती है, जिस मौन प्रशंसा मिलती है कि कितनी कड़ी मेहनत से इन लोगों ने इसे तैयार किया। लेकिन दूसरे वे लोग हैं जो चट्टान की दीवारें बनाते हैं और हर वक्त एक चट्टान को दूसरी के ऊपर रखकर अपने मस्तिष्क की कल्पना-दृष्टि को कोई-न-कोई रूप देने में लगे रहते हैं। यह एक छत भी हो सकती है, जिसपर गुलाब की क्यारियाँ चढ़ रही हों और गरमी के दिनों के लिए उसपर बाहर कुरसियाँ डली हों। या फिर चट्टान की दीवार सेब का बाग या फिर चहारदीवारी के रूप में भी हो सकती है। जब ये लोग काम खत्म करते हैं तो उनके पास एक दीवार से कहीं कुछ ज्यादा होता है। यह लक्ष्य ही है जो अंतर पैदा करता है। तुम रॉकेट विज्ञान को अपना पेशा, अपनी जीविका मत बनाओ—इसे अपना धर्म समझो, अपना मिशन बनाओ।' फॉन ब्रॉन में क्या मैंने प्रो. विक्रम साराभाई को देखा? यह सोचकर मुझे बहुत प्रसन्नता होती है कि मुझे ऐसा लगा।

तीन साल लगातार परिवार में तीन मौतें हो जाने के कारण मुझे अपने काम के प्रति अब पूरी से भी ज्यादा प्रतिबद्धता की जरूरत थी। मैंने अपना सबकुछ एस.एल.वी. को तैयार करने में लगा डाला। मुझे लगा जैसेकि मैंने वह रास्ता तलाश लिया है जिसपर मुझे आगे बढ़ना है। मेरे लिए एस.एल.वी. ईश्वर का मिशन और उसकी प्रगति मेरा उद्देश्य बन गया। इस दौरान मैंने अपनी सब दूसरी गतिविधियाँ, जो थोड़ी-बहुत हुआ करती थीं, भी रोक दीं। अब न मैं शाम को बैडमिंटन खेलता, न ही साप्ताहिक या दूसरी छुट्टियाँ करता, न परिवार, न रिश्तेदारी और यहाँ तक कि दोस्तों के यहाँ भी आना जाना छूट गया।

अपने मिशन में सफल होने के लिए आपको अपने लक्ष्य के प्रति एकाग्र-चित्त होकर समर्पित होना चाहिए। मेरे जैसे लोग प्राय: 'कार्याधिक्य' से ग्रस्त कहे जाते हैं। लेकिन मुझे इसपर आपत्ति है, क्योंकि यह एक प्रकार की रोगात्मक स्थिति अथवा बीमारी का सूचक है; जबकि वचनबद्धता, एकाग्रचित्त लक्ष्य प्राप्त करने के साधन हैं। यदि मैं वह करता हूँ जिसके लिए मेरी इच्छा दुनिया में कुछ भी

होने से ज्यादा करने की है और जो मुझे खुशी प्रदान करती है, तो ऐसा काम करने को मतिभ्रंश नहीं कहा जा सकता।

जो लोग अपने पेशे में शीर्ष पर पहुँचना चाहते हैं, उनके भीतर पूर्ण वचनबद्धता का मूलभूत गुण होना बहुत जरूरी है। पूरी क्षमता के साथ काम करने की इच्छा के बाद मुश्किल से ही कोई और इच्छा जन्म ले पाती है। मेरे साथ जो लोग थे उन्हें प्रति हफ्ते चालीस घंटे काम करने का पैसा मिलता था। मैं ऐसे लोगों को भी जानता हूँ जो हर हफ्ते साठ, अस्सी और यहाँ तक कि सौ घंटे तक काम करते थे; क्योंकि उन्हें अपना काम रोमांच पैदा करनेवाला, चुनौती भरा एवं अच्छा प्रतिफल देनेवाला लगता था। सभी सफल पुरुषों व महिलाओं में पूर्ण वचनबद्धता का गुण जरूर पाया जाता है। क्या आप कुछ देखने या करने से इसलिए इनकार कर रहे हैं, क्योंकि यह आपको उस व्यवस्था से सामना करवाता है जिसमें आपका विश्वास है? क्या आप उन तनावों को झेल सकने में सक्षम हैं जो आपके जीवन में पैदा हो रहे हैं? एक ऊर्जावान और एक किंकर्तव्यविमूढ़ अथवा भ्रमित व्यक्ति के बीच का फर्क वस्तुत: उनके अनुभवों को व्यवहार में लाने के तरीकों में अंतर का है। आदमी के जीवन में मुश्किलें आनी जरूरी हैं; क्योंकि वे न सिर्फ उसकी प्रगति अपितु उसके स्वास्थ्य के लिए जरूरी हैं।

जब आप एक बार ऐसा कर चुके हों, अपने कार्य के प्रति अपने को वचनबद्ध बना चुके हों और ऊर्जावान हो चुके हों तब आपको अच्छे स्वास्थ्य और अपार ऊर्जा की भी आवश्यकता होगी। शीर्ष पर पहुँचने के लिए दृढ़ इच्छा शक्ति जरूरी होती है, चाहे वह माउंट एवरेस्ट हो या आपके कार्यक्षेत्र का शीर्ष। हर व्यक्ति अलग-अलग ऊर्जा लेकर जनमा है और जो सबसे पहले प्रयास करेगा और अपनी ऊर्जा का इस्तेमाल करेगा, वही सबसे जल्दी अपने जीवन को सुव्यवस्थित कर पाएगा।

सन् 1979 में छह सदस्यों की एक टीम दूसरे चरण की जटिल नियंत्रण प्रणाली का उड़ान रूपांतर तैयार करने में लगी थी। इस प्रणाली का स्थैतिकी परीक्षण व मूल्यांकन किया जाना था। परीक्षण के पंद्रह मिनट पहले प्रणाली की उलटी गिनती पर टीम की नजर लगी हुई थी। प्रणाली के बारह वाल्वों में से एक वाल्व जाँच के दौरान सही नहीं पाया गया। इससे चिंतित होकर टीम के सदस्य वाल्व में आई गड़बड़ी देखने परीक्षण स्थल पर गए। तभी अचानक लाल धुएँवाले नाइट्रिक एसिड (आर.एफ.एन.ए.) का टैंक फट गया और नाइट्रिक एसिड टीम के सदस्यों पर जा गिरा। टीम के सदस्य गंभीर रूप से जल गए। घायल साथियों

को इस हालत में देखना एक जबरदस्त आघात लगने जैसा अनुभव था। कुरुप एवं मैं तुरंत ही त्रिवेंद्रम मेडिकल कॉलेज अस्पताल गए और अपने जख्मी साथियों को भरती कर लेने का अनुरोध किया। उस वक्त अस्पताल में छह बिस्तर तक खाली नहीं थे।

इन छह घायल साथियों में एक शिवरामकृष्णन नायर भी थे। उनके शरीर पर कई जगह एसिड गिरा था। जैसे-तैसे हमें अस्पताल में एक बिस्तर उपलब्ध हो गया। शिवरामकृष्णन दर्द से कराह रहे थे। मैं उनके सिरहाने बैठा रहा। तड़के तीन बजे करीब शिवरामकृष्णन होश में आए। होश में आने के बाद पहला शब्द ही उन्होंने इस दुर्घटना पर अफसोस जाहिर करने के लिए बोला और मुझे इस बात के लिए आश्वस्त किया कि दुर्घटना के कारण परीक्षण कार्यक्रम में जो देरी हो गई है, उसे वे जल्दी ही ठीक कर देंगे। इस गंभीर हालत में भी काम के प्रति उनकी जो चिंता व आशा थी, वह मुझे भीतर तक छू गई।

शिवरामकृष्णन जैसे लोग दुर्लभ ही हैं। ऐसे लोग हमेशा कुछ और ज्यादा हासिल करने के लिए लगातार मेहनत करते हैं और उनके सामाजिक व पारिवारिक जीवन भी अपने सपने में समाहित कर लेते हैं। इन हुतात्माओं को अपने किए का अच्छा प्रतिफल अवश्य मिलता है—एक ऐसा अंतर्निहित आनंद, जो जीवन में प्रवाहित होता रहता है। इस घटना से मुझमें टीम के लोगों के प्रति एक बड़ा विश्वास पैदा हो गया था, एक ऐसी टीम जो सफलता व असफलता में एक चट्टान की भाँति खड़ी रह सकती है।

मैंने एक शब्द 'प्रवाह' का प्रयोग, बिना इसके अर्थ की व्याख्या किए, कई जगह किया है। आखिर यह प्रवाह है क्या? यह आनंद क्या है? मैं उन्हें जादुई क्षण कह सकता हूँ। मैं क्षणों एवं उत्तमता के बीच एक ऐसी अनुरूपता देखता हूँ, जिसे आप बैडमिंटन खेलते वक्त या जॉगिंग करते वक्त महसूस करते हैं। प्रवाह एक ऐसी अनुभूति है जिसका हमें उस समय अनुभव होता है जब हम अपने काम में पूरी तरह मशगूल होते हैं। प्रवाह के दौरान काम आंतरिक प्रेरणा से ही होता चला जाता है, जिसमें काम करनेवाले की चेतना का दखल जरूरी नहीं होता। कोई जल्दी नहीं होती है; घबराहट पैदा करनेवाली कोई माँगें नहीं होती हैं। भूत व भविष्य गायब हो जाता है। स्वयं एवं कार्य के बीच का फर्क मिट जाता है। हम सभी एस.एल.वी. के प्रवाह में थे। तभी तो काफी कठोर परिश्रम करते हुए भी हम काफी आराम में, ऊर्जावान एवं तरोताजा थे। यह कैसे हो पाया? किसने इस प्रवाह को बनाया?

शायद यह एक ऐसा सोद्देश्यपूर्ण संगठन था जिसमें हम किसी महती लक्ष्य को हासिल करने के लिए काम कर रहे थे। हम सबसे व्यापक संभावित लक्ष्य स्तर को तय करते और फिर कई विकल्पों, तरीकों से उस लक्ष्य को प्राप्त करने की दिशा में काम करते। इस प्रकार समस्याओं को हल करने के लिए जो सर्जनात्मक परिवर्तन आते वही हमें प्रवाह में बनाए रखते।

जब एस.एल.वी.-3 का ठोस आकार सामने आने लगा तभी एकाग्रता एवं योग्यता भी सुस्पष्ट रूप से बढ़ती गई। मैं पूरे विश्वास में एस.एल.वी.-3 परियोजना को सफल होते देख सकता था, जो मेरा पावन सपना था। प्रवाह नियंत्रित सृजन का ही एक उप-उत्पाद है। पहली जरूरत इस बात की होती है कि आप उस काम को पूरी मेहनत के साथ करें जो आपके समक्ष एक चुनौती के रूप में है और जिसे करने के लिए आपका दिल आपको इजाजत देता है। हो सकता है, यह कोई बहुत जबरदस्त चुनौती न हो। लेकिन एक ऐसा काम जिसे लेकर आपको यह लगने लगे कि जो आप आज कर रहे हैं वह आपके द्वारा कल किए गए काम से कहीं ज्यादा अच्छा है अथवा आपने पहले इसे करने की कोशिश की थी। प्रवाह बनाए रखने के लिए एक और महत्त्वपूर्ण चीज है—अनवरत समय। मेरे अनुभव में आधे घंटे से कम समय में प्रवाह की स्थिति में आना बहुत ही मुश्किल है और यह तब असंभव हो जाता है जब बीच-बीच में दखल उत्पन्न होते रहें।

क्या यह संभव है कि आप किसी भी तरह की युक्ति से प्रवाह की स्थिति में उसी प्रकार से आ सकते हैं जैसे हम तुरंत ही अपने लिए कुछ सीखने के लिए कर लेते हैं ? इसका जवाब है—हाँ। और इसका जो रहस्य है वह यह कि पिछली बार या पहले कभी आप प्रवाह में रह चुके हों; क्योंकि हर व्यक्ति में स्पंदन उत्पन्न करने के लिए भीतर एक अद्वितीय प्राकृतिक आवृत्ति होती है। अगर यह सामान्य रूप से आपके भीतर है तो आप इसे पहचान सकते हैं। अगर आपमें से यह निकल गई है तो आप प्रवाह की स्थिति उत्पन्न कर सकते हैं।

मैंने इस अवस्था को कई बार अनुभव किया है—एस.एल.वी. मिशन में करीब-करीब हर दिन। प्रयोगशाला के दिनों में भी अनेक बार मैंने प्रयोगशाला को खाली पाया और अनुभव किया। कई बार मैं और मेरी टीम के सदस्य काम में इस कदर लगे रहते थे कि हम दोपहर का खाना ही नहीं खा पाते और न ही हमें लगता कि हम भूखे हैं।

ऐसे कई अवसरों का विश्लेषण करने पर मैंने पाया कि जब परियोजना का काम पूरा होने के करीब था तब यह प्रवाह बना हुआ था या फिर परियोजना जब

उस चरण में पहुँच गई थी जब हमारे पास पूरे आँकड़े इकट्ठे हो गए थे और हम समस्याओं का हल निकालने की तैयारी शुरू करने वाले थे। मैंने यह भी महसूस किया कि ऐसा उन दिनों में हुआ जब दफ्तर में अपेक्षित शांति रही, कोई बैठकें या चिल्लाने का माहौल नहीं रहा। इस तरह की स्थितियाँ धीरे-धीरे बनती गईं और सन् 1979 के मध्य में एस.एल.वी. का सपना पूरा हुआ।

एस.एल.वी.-3 का पहला प्रायोगिक उड़ान परीक्षण हमने 10 अगस्त, 1979 को निर्धारित किया था। इस अभियान का मुख्य उद्देश्य श्रीहरिकोटा प्रक्षेपण केंद्र में पूर्णरूप से समेकित प्रक्षेपण यान विकसित करना था तथा उड़ान प्रणालियों—जैसे स्टेज मोटर्स, निर्देशन व नियंत्रण प्रणाली और इलेक्ट्रॉनिक प्रणाली को जाँचना था। साथ ही नई प्रणालियों—जैसे चैकआउट, ट्रैकिंग, टेलीमीटरी एवं आँकड़ों संबंधी सुविधाएँ भी इस केंद्र में विकसित करनी थीं। इस प्रकार तेईस मीटर लंबा, चार चरणोंवाला एस.एल.वी. रॉकेट सुबह सात बजकर अट्ठावन मिनट पर छोड़ा गया। इसका वजन सत्रह टन था। प्रक्षेपण के फौरन बाद ही इसकी प्रणालियों ने अपने काम शुरू कर दिए।

पहले चरण ने पूर्ण सफलता से अपना काम किया। इस चरण को दूसरे चरण में परिवर्तित होना था। हम एस.एल.वी.-3 को उड़ता हुआ देखने की उम्मीदें लिये हुए थे। लेकिन अचानक ही एक गड़बड़ी आ गई और उम्मीदों को धक्का लगा। रॉकेट का दूसरा चरण नियंत्रण से बाहर हो गया। 317 सेकंड के बाद ही उड़ान बंद हो गई और मेरे चौथे चरण सहित पूरा यान श्रीहरिकोटा से पाँच सौ साठ किलोमीटर दूर समुद्र में आ गिरा।

इस घटना से हम सबको गहरा धक्का लगा। मुझे नाराजगी और निराशा दोनों हुईं। अचानक ही मुझे महसूस हुआ कि मेरे पैर इस कदर थम गए हैं कि उनमें दर्द हो रहा है। यह समस्या मेरे शरीर में नहीं थी बल्कि मेरे मस्तिष्क में कुछ घटित हो रहा था।

मेरे हॉवर क्राफ्ट 'नंदी' की असामयिक मौत, राटो परियोजना का बीच में ही छोड़ दिया जाना, एस.एल.वी. डायामाँट के चौथे चरण को रोक देना—ये सब मेरी आँखों के सामने आ गए। पिछले कुछ वर्षों में मैं जैसे-तैसे इन झटकों से उबरा और नए सपने सँजोए। उस दिन मैं हर झटके को लेकर काफी निराशा एवं अवसाद में था।

'आपको इसका क्या कारण लगता है ?' किसीने मुझसे ब्लॉक हाउस में यह पूछा। मैंने इसका जवाब ढूँढ़ने की कोशिश की; लेकिन मैं काफी थका हुआ भी

था। मैंने निरर्थक समझते हुए इसका कारण ढूँढ़ने की कोशिश छोड़ दी। प्रक्षेपण जल्दी सुबह ही हुआ था, पूरी रात उलटी गिनती चली थी। पिछले एक हफ्ते से मुश्किल से ही थोड़ा सो पाया था। मानसिक व शारीरिक रूप से थका हुआ मैं अपने कमरे में गया और बिस्तर पर कटे पेड़-सा जा गिरा।

मेरे कंधे पर हाथ रखकर किसीने मुझे जगाया। दोपहर खत्म हो चुकी थी और शाम होने जा रही थी। मैंने देखा, डॉ. ब्रह्मप्रकाश मेरे पास बैठे हुए हैं। 'खाने का क्या हो रहा है ?' उन्होंने पूछा। उनका यह स्नेह व चिंता मुझे गहराई तक छू गई। मुझे बाद में पता चला कि इससे पहले भी दो बार डॉ. ब्रह्मप्रकाश मेरे कमरे में आए थे, लेकिन मुझे सोता देखकर लौट गए थे। वह पूरे समय यह प्रतीक्षा करते रहे कि मैं उठ जाऊँ और फिर उनके साथ दोपहर का भोजन करूँ। मैं उदास तो था, लेकिन अकेलापन नहीं लग रहा था। डॉ. ब्रह्मप्रकाश के साथ ने मेरे भीतर एक नया विश्वास जगाया। खाना खाते वक्त उन्होंने बहुत कम ही बातचीत की और सावधानीपूर्वक एस.एल.वी.-3 के जिक्र तक से बचते हुए बहुत ही शालीनता से मुझे दिलासा दी।

□

: नौ :

कठिनाई भरे उस दौर में डॉ. ब्रह्मप्रकाश ने मेरी काफी सहायता की। दुःखों को झेल जाने की उनमें जो अद्‌भुत क्षमता थी, वह हम सबके लिए एक मिसाल थी। व्यवहार में डॉ. ब्रह्मप्रकाश ने घायल योद्धा के इलाज का सिद्धांत बताते हुए कहा, 'किसी तरह उसे जीवित घर ले आओ। फिर वह स्नेह की दवा से जरूर ठीक हो जाएगा।' उन्होंने पूरी एस.एल.वी. टीम को अपने पास बुलाया और मुझे दिखाते हुए कहा कि एस.एल.वी.-3 की असफलता का दुःख मुझे अकेले को नहीं है। वह बोले, 'तुम्हारे सारे साथी तुम्हारे सामने खड़े हैं।' इससे मुझे काफी भावात्मक सहारा, प्रोत्साहन एवं मार्गदर्शन मिला।

11 अगस्त, 1979 को एस.एल.वी. की उड़ान के बाद की समीक्षा बैठक में सत्तर से ज्यादा वैज्ञानिकों ने भाग लिया। इसमें मिशन की असफलता के तकनीकी कारणों का पूरा ब्योरा तैयार किया गया। बाद में उड़ान के बाद की स्थिति के विश्लेषण के लिए बनी एस.के. अतिथन कमेटी ने यान में आई गड़बड़ियों के कारणों का खुलासा किया। इसमें यह सामने आया कि यान में जो गड़बड़ी आई उसका कारण दूसरे चरण की नियंत्रण प्रणाली का खराब हो जाना था। दूसरे चरण की उड़ान के दौरान कोई नियंत्रण बल काम नहीं कर रहा था, जिससे यान वायुगतिकीय रूप से अस्थिर हो गया और इस वजह से अपेक्षित ऊँचाई एवं वेग प्राप्त नहीं कर पाया और जब तक यान का अगला चरण शुरू हो पाता, इससे पहले ही वह समुद्र में गिर गया।

दूसरे चरण की गड़बड़ी का और गहराई से विश्लेषण करने पर एक और कारण सामने आया। ईंधन शक्ति के लिए ऑक्सीडाइजर के रूप में इस्तेमाल किया गया लाल धुएँवाला नाइट्रिक एसिड बड़ी मात्रा में निकल गया था। नाइट्रिक एसिड बह जाने से हुआ यह कि जब नियंत्रण बल की आवश्यकता पड़ी तो केवल ईंधन ही मिल पाया और नाइट्रिक एसिड नहीं। इस कारण प्रणाली को आवश्यक नियंत्रण